
इकाई 1 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संविधान की प्रस्तावना

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

1.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

1.4.5 समाजवादी राज्य -

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

इस इकाई 1 में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
3. भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये गये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

1.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और संस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए
दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष
शुक्ल सप्तमी, सम्बत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित
और आत्मार्पित करते हैं।"

यहाँ हम स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता हैं और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात् भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास हैं और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति हैं इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण हैं कि विशेषतः लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

4.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात् सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

4.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, संस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आंग्लभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र- राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

1.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान हैं जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

1.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्रावधान नहीं किया था इसका प्रावधान 42 वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनों सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें साथ ही उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है-

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मंत्रिपरिषद(संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मंत्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, संस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए

इनकी अपनी संस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है | एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है ,दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबन्ध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियों, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
..2 ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3 अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4 आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5 कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन, अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र के पास होना
.6 आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
..7 दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
.8 पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/विशेषरूप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
2. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता - नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य असत्य/
3. लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य/असत्य/
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्य/असत्य/
5. पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य/असत्य/

1.7 सारांश

इकाई 1 के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है। जिसमें जिसमें विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र-राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ-साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया कि संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

1.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संदर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन। अपने-2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्र प्रताप सिंह

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान -	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय संविधान -	दुर्गादास बसु

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?
2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 2 : भारतीय संविधान की विशेषताएं

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्रस्तावना
- 2.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
- 2.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
- 2.6 लोक कल्याणकारी राज्य
- 2.7 सारांश
- 2.8 शब्दावली
- 2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निर्माण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यों हुआ?
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये
3. भारतीय संविधान में संघात्मक उपबन्ध क्यों किये गये
4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

2.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और संस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।“

यहाँ हय स्पष्ट करना आवश्यक हैं कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह हैंकि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता हैंऔर अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास हैंऔर भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य हैंकि- राज्य किसी धर्मविशेषको 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य हैंकि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता हैंजबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति हैंइसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य हैंकि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण हैंन कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य हैंकि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य हैंकि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य हैंकि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि

चुने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।

6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वें संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

2.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान - संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात् सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

2. विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, संस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आंग्लभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों के मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक महालेखा परीक्षक, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति

आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैंकि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति हैं कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. पंथ निरपेक्ष - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान हैं जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. समाजवादी राज्य -

इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6. कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है- अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात् न्यूनतम 34 राज्यों का समर्थन।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है-

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरा तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि – “हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।”

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मंत्रिपरिषद(संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मंत्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर

करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5. एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, संस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी संस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

- 1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में है क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएं, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

2.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियाँ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
.2. ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4. आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5. कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन, अवशिष्ट शक्तियों के केंद्र के पास होना

.6.आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
.7.दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
.8.पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

2.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/विशेषरूप से भाग 4 के नीति निर्देशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
- 2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य असत्य/
- 3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्यअसत्य/
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्यअसत्य/
- 5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्यअसत्य/

2.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं, जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र-राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ-साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया कि संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

2.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने-2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति

-

डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है

इकाई -3 : मूल अधिकार और मूल कर्तव्य

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मौलिक अधिकार

3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

3.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 19 से 22

3.3.4 शोषण के विरुद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

3.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 25-28

3.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार : अनुच्छेद 29-30

3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार : अनुच्छेद 32

3.4 मूल कर्तव्य

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हमने भारतीय संविधान की विशेषता का अध्ययन किया है। अध्ययन के क्रम में मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्य के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त किया यह जानकारी प्राप्त हो सकी कि कितने मौलिक अधिकार है और कितने मौलिक कर्तव्य।

इस इकाई 3 में हम छः मौलिक अधिकार का क्रमशः विस्तृत अध्ययन करेंगे तथा मूल कर्तव्यों का अध्ययन करेंगे भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकारों की व्यवस्था करने के पीछे संविधान निर्माताओं की धारणा थी कि स्वतन्त्र देश के नागरिक के रूप में भारतवासी अपना जीवन यापन कर सकें।

इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि मूल अधिकार के उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाना भी मूल अधिकार है। इसी लिए डॉ० अम्बेडकर इस अधिकार को संविधान की आत्मा कहा है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से हम जान सकेंगे कि -

- 1.मौलिक अधिकार कितने है।
- 2.ये हमारे लिए मूलभूत है और क्यों है।
- 3.साथ ही यह भी जान सकेंगे कि किन परिस्थितियों में मूल अधिकार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते है।
- 4.यह जान सकेंगे कि मौलिक कर्तव्य क्या हैं और इसे क्यों अपनाया गया और कहाँ से अनुसरण किया गया।

3.3 मौलिक अधिकार

“ अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैंजिनके अभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता”।

मौलिक अधिकार राज्य के विरुद्ध व्यक्ति के अधिकार हैंये राज्य के लिए नकारात्मक आदेश हैंअर्थात् राज्य के कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाते हैंमौलिक अधिकारों के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मौलिक अधिकारों को नागरिक अधिकार के रूप में विश्व में सर्व प्रथम ब्रिटेन में दिया गया। इसे सन 1215 में वहाँ के सम्राट सर जान द्वितीय ने दिया जिसे मैग्नाकार्टा कहा जाता है भारत ने भी अपने मौलिक अधिकार को भारत का मैग्नाकार्टा बताया।

1689 में सम्राट ने कुछ और अधिकार प्रदान किया जिसे वहाँ का विल ऑफ राइट्स कहा गया। अमेरिका ने भी अपने मौलिक अधिकार को अमेरिका का विल ऑफ राइट्स कहा।

चूँकि मौलिक अधिकार लिखित संविधान के अंग होते हैंऔर ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के कारण मौलिक अधिकार उस रूप में नहीं हैं जैसे भारत व अमेरिका को माना जाता है।

विश्व में सर्वप्रथम लिखित संविधान अमेरिका का बना लेकिन अमेरिका के मूल संविधान में भी मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं था संविधान लागू होने के दो वर्ष बाद 1791 में प्रथम दस संविधान संशोधनके द्वारा अमेरिका में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया। अमेरिका में मौलिक अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रूप में परिभाषित है। प्राकृतिक अधिकार के अन्तर्गत वे सभी अधिकार आ जाते हैंजो कि व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। ये असीमित है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय प्राकृतिक या नौसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाकर मौलिक अधिकारों को घटा-बढ़ा सकता है। इसलिए अमेरिका की न्यायपालिका विश्व की सबसे शक्तिशाली न्यायपालिका के नाम से जानी जाती है।

भारतीय संविधान के अनु0 12 से लेकर 35 तक में मौलिक अधिकारों का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है। अनु 12 व 13 में मौलिक अधिकार की प्रकृति बतायी गयी है। अनु0 33 व 34 में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है। अनु0 35 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनु0 14 से लेकर अनु0 32 तक द्वारा जिसमें अनु0 31 को छोड़कर और 21(क) को जोड़कर अर्थात् कुल 19 अनुच्छेदों के द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रूप में परिभाषित हैं अतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।

मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, अर्थात् न्यायालय द्वारा लागू कराए जा सकते हैं। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में उच्च एवं उच्चतम न्यायालय दोनों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत में राजनितिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। मौलिक अधिकार न तो निरंकुश हैं और न असीमित प्रत्येक अधिकारों पर विभिन्न आधारों पर युक्त-युक्त निर्बन्धन लगाया गया है। मौलिक अधिकारों को आपातकाल में राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, और संसद कानून बनाकर उसे स्थगित कर सकती है।

मूल संविधान में कुल सात मौलिक अधिकारों का समावेश था लेकिन 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाकर कानूनी अधिकार बना दिया गया और इसे अनु0 300 (क) में रखा गया है और कहा गया है कि संसद विधि बनाकर नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर सकती है लेकिन इसके लिए सरकार को उचित मुआवजा देना होगा।

3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

वर्तमान में केवल 6 मौलिक अधिकार ही हैं जो कि निम्नलिखित हैं:-

- | | |
|---------------------------------|--------------|
| 1.समानता का अधिकार | अनु0 14 - 18 |
| 2.स्वतन्त्रता का अधिकार | अनु0 19-22 |
| 3.शोषण के विरुद्ध अधिकार | अनु0 23- 24 |
| 4.धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार | अनु0 25-28 |
| 5.संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार | अनु0 29-30 |
| 6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार | अनु0 32 |

मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य राज्य और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है।

अनु0 12 इस अनु0 में राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है इसमें कहा गया है कि यहाँ राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार संघ विधानमण्डल राज्यों की सरकारें राज्यों के विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र में भारत सरकार के अधीन सभी स्थानीय एवं अन्य प्रधिकारी (शक्ति वैधता) शामिल है। यहाँ स्थानीय के अन्तर्गत नगर निगम नगर पालिका जिला बोर्ड पंचायती राज्य व जिला परिषद आदि आता है तथा प्राधिकारी के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम लोक सेवा आयोग विश्वविद्यालय रेलवे बैंक आदि सभी शामिल है।

कौन राज्य के अन्तर्गत आता है और कौन नहीं आता इसे न्यायपालिका तय करता है जब कोई व्यक्ति मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण में जाता है तो न्यायालय देखता है कि उसे राज्य माना जाए या न माना जाए। न्यायपालिका ने वर्तमान में वैष्णो देवी के मंदिर और अमरनाथ की गुफा को भी राज्य की संज्ञा प्रदान किया है।

उपर्युक्त सभी के विरुद्ध व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त है।

अनु0 13 इससे मौलिक अधिकार के प्रकृति और स्वरूप की विवेचना की गयी है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 13 (1) संविधान लागू होने के पूर्व में बनायी गयी विधियाँ यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैं तो वे उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13 (2) संविधान लागू होने के बाद भी राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हो यदि राज्य ऐसी कोई विधि बनाएगा तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13 (3) यहाँ विधि शब्द के अन्तर्गत कानून, उपकानून, नियम, उपनियम, आदेश, अध्यादेश, संविदा, समझौता सन्धि करार आदि सभी शामिल है।

इस अनु0 में निम्नलिखित दो सिद्धान्त है:-

1. पृथक्करण का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करता है तो केवल वही भाग शून्य घोषित होगा, पूरा कानून नहीं लेकिन उस भाग के निकाल देने से पूरे कानून का कोई अर्थ नहीं रह जाता तो पूरा कानून ही शून्य घोषित हो जाएगा।

2. आच्छादन का सिद्धान्त

यदि पूर्व में बनायी गयी विधियों मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हैं तो वे नष्ट नहीं हो जाती बल्कि उन पर मौलिक अधिकारों की छाया आ जाती है यदि संशोधनकरके उल्लंघन तक वाली विधियां ठीक कर ली जाएं तो वे पुनः जीवित हो जाती है। इसे चन्द्र ग्रहण का सिद्धान्त भी कहते है।

अनु0 13 के अन्तर्गत नयायपालिका को मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है।

3.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

आधुनिक युग में समानता फ्रांसीसी क्रान्ति को देन है। भारतीय संविधान के अनु0 14 से 18 तक में समानता के विभिन्न रूपों कानूनी समानता, सामाजिक समानता अवसर की समानता आदि का उल्लेख है।

अनु0 14 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा।

इसमें निम्नलिखित दो बातें है

1. विधि के समक्ष समता यह ब्रिटिश संविधान से गृहित है यह कानूनी समानता का नकारात्मक दृष्टिकोण है इससे निम्न 3 अर्थ निकलता है।

1. देश में कानून का राज्य

2. देश में सभी व्यक्ति चाहे वे जिस भी जाति, धर्म व भाषा के हों सभी एक सामान्य कानून के अधीन है।

3. कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है।

2..विधियों के समान संरक्षण यह अमेरिकी संविधान से गृहीत है। इसका अर्थ यह है कि समय परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा क्योंकि समानता का अर्थ सबकी समानता न होकर समानों में समानता है। अर्थात् एक ही प्रकार के योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के साथ जाति, धर्म भाषा व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।

भारतीय संविधान विधायिन वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो कि अनु0 14 का उल्लंघन नहीं करता है।

विधायिनी वर्गीकरण का अर्थ है यदि एक व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार अन्य से भिन्न है तो उसे एक वर्ग माना जाएगा और समानता का सिद्धान्त उस पर अकेले लागू होगा लेकिन इसका आधार वैज्ञानिक तर्कसंगत और युक्त होना चाहिए।

1. इसमें नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त निहित है।
2. यह भारतीय संविधान का मूल ढांचा है।
3. इसमें विधि के शासन का उल्लेख है।
4. इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है।

अनु0 15 इसमें सामाजिक समानता का उल्लेख है इसमें निम्न प्रावधान है।

15(1) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म मूलवंश जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15 (2) एक नागरिक दूसरे के साथ धर्म मूल वंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर दुकानों होटलों सार्वजनिक भोजनालयों व सार्वजनिक मनोरजन के स्थानों तथा राज्य विधि द्वारा पूर्णतः व अंशतः पोषित हो नलकूपों तलाबों सड़कों व सार्वजनिक समागम के स्थानों पर भी कोई भेदभाव नहीं करेगा।

अपवाद इसका अर्थ अस्थायी व्यवस्था से है। यह कुछ परिस्थितियों वश दिया गया है इसके आधार पर उपर्युक्त का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

15(3) राज्य स्त्रियों और बच्चों को विशेष सुविधाएं दे सकता है, वर्तमान में महिलाओं को दिया गया आरक्षण का आधार यही अनु0 है।

15(4) राज्य सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को विशेष सुविधाएं दे सकता है। वर्तमान में OBC, SC, ST का आधार यही अनु0 है।

15(5) के प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम 1951 (18 जून)को संविधान में जोड़ा गया। उल्लेखनीय है कि रहे कि **चम्पाकम दोराई राजन बनाम मद्रास** राज्य के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा जातियों के आधार पर मेडीकल कालेज में सीटों के आवंटन को अवैध घोषित कर दिया गया था, उसे प्रभावहीन बनाने के लिए इसे संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 :इसमें अवसर की समानता का उल्लेख है। भारत में एकल नागरिकता है। इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान के किसी अनु0 में नहीं है। लेकिन इसका विचार अप्रत्यक्ष रूप से इसी में निहित है। इसमें निम्न प्रावधान हैं

अनुच्छेद 16(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने के अवसर की समानता होगी।

अनुच्छेद 16(2) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा अर्थात् राज्य किसी भी नागरिक को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग जन्म, स्थान उद्भव व निवास स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर सरकारी पदों नियुक्ति व नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (3) राज्य निवास स्थान के आधार पर कुछ विशेष पदों पर भर्ती कर सकते हैं लेकिन इसके सन्दर्भ में कानून बनाने का अधिकार उस राज्य को नहीं बल्कि संसद को प्राप्त होगा और संसद इस प्रकार से कानून बनायेगी कि वह अर्हता देश भर में समान रूप से लागू रहेगी।

अनुच्छेद 16(4) यदि राज्यों की राय में सरकारी नौकरियों में सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें आरक्षण दे सकता है।

वर्तमान में इसी अनु0 के द्वारा O.B.C., S.C. व S.T. को आरक्षण प्रदान किया गया है। ध्यान रहे कि आरक्षण सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिया जा सकता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है।

वर्गों को दिया गया आरक्षण उर्ध्वार्धर है जबकि महिलाओं को दिया गया आरक्षण क्षैतिज है। अर्थात् प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने ही वर्ग में आरक्षण की हकदार होगी। उल्लेखनीय है कि महिलाओं को आरक्षण इस अनु0 के द्वारा नहीं दिया गया है क्योंकि प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती।

पिछड़े वर्ग को आरक्षण मण्डल रिपोर्ट के आधार पर 27% वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा 1990 में दिया गया। इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया था कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती और प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता।

इसे प्रभावहीन बनाने के लिए अर्थात् SC व ST को प्रोन्नति में आरक्षण देने के लिए 77 वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित करके संविधान में अनु0 16 (4) (क) जोड़ा गया तथा आरक्षण की सीमा 50% से अधिक बढ़ाने के लिए 81 वां संविधान संशोधन अधिनियम लाया गया और 16 (ख) जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 (4क) यदि राज्यों राय में सरकारी नौकरियों SC व ST का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें प्रोन्नति में भी आरक्षण दे सकता है।

अनुच्छेद 16 (4ख) यदि पूर्व वर्ष में आयी रिक्तियां SC व ST के उम्मीदवार से नहीं भरी जाती तो आगे उन पर 50% की आरक्षण सीमा लागू नहीं होगी।

वैकलाग का विचार इसी में निहित है। यदि अनु0 16(4ख) को अनु0 16(4) के साथ मिलाकर पढ़ा जाए तो वैकलाग का अधिकार OBC को भी प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 17 इसमें भी सामाजिक समानता का ही उल्लेख है इसका उद्देश्य जात-पात के भेदभाव को समाप्त करना है। छुआछूत भारत की एक बहुत बड़ी समस्या थी इस अनु0 पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है।

इसमें कहा गया है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है इसका प्रत्येक रूप में आचरण निषिद्ध है तथा इसका उल्लंघन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा।

इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद ने अस्पृश्यता अपराध उन्मूलन अधिनियम 1955 पारित किया। इसे 1976 में और कठोर बनाते हुए कहा गया कि इसके भेदभाव में दोषी पाए गए व्यक्ति को चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

अनुच्छेद 18 स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न प्रकार की उपाधियां वितरित करके भारत को विषमतामूलक बनाया था अतः भारत में समानता लाने के लिए उपाधियों का अन्त करना आवश्यक था। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 18(1) राज्य अपने नागरिकों को विद्या या सेना सम्बन्धी उपाधि को छोड़कर अन्य कोई उपाधि नहीं देगा।

अनु0 18(2) कोई भी नागरिक विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(3) कोई गैर नागरिक या विदेशी जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(4) कोई गैर नागरिक जो कि भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भेट या उपलब्धि स्वीकार नहीं करेगा।

बालाजी राघवन बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनु0 18 जन्म आधारित उपाधियों का निषेध करता है, लेकिन कर्म आधारित उपाधियों का नहीं भारत रत्न पद्म भूषण पद्मविभूषण व पद्मश्री आदि ऐसी उपाधियों हैं जो जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित हैं ये विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दी

जाती हैं अतः अनु 18 इनका निषेध नहीं करता लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इन उपाधियों का प्रयोग नाम के आगे व पीछे नहीं किया जायेगा जनता पार्टी सरकार ने 1977 में भारत रत्न आदि जैसी उपाधियों पर रोक लगा दिया लेकिन 24 जनवरी 1980 से इन्दिरा सरकार ने इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया।

3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 19 से 22

स्वतन्त्रता भी फ्रांसीसी क्रान्ति की देन है। इसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य है। भारतीय संविधान के अनु 19 से लेकर अनु 22 तक में स्वतन्त्रता का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है।

अनुच्छेद 19 यह भारतीय संविधान का मूल ढांचा है। यह स्वतन्त्रता केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान की गयी है। अनु 19 में वर्णित सभी स्वतन्त्रताएँ सामाजिक है। अनु 19 में वर्णित स्वतन्त्रता आपातकाल में अनु 358 के अन्तर्गत स्वतः निलम्बित हो जाती है। अनु 19(1) क से लेकर अनु 19(1) छ तक में सात स्वतन्त्रताओं का उल्लेख था लेकिन अनु 19(1)च में वर्णित सम्पत्ति के अर्जन धारण और व्ययन की स्वतन्त्रता को निकाल देने से वर्तमान में 6 स्वतन्त्रताएँ है। प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनु 19(2) से लेकर 19 (6) तक द्वारा क्रमशः युक्त 2 निर्बंधन लगाया गया है। यह निर्बंधन क्रमशः राष्ट्र की एकता व अखण्डता भारत की सम्प्रभुता सार्वजनिक हित आदि के आधार पर लगाया गया है।

अनु 19(1)क इसमें भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। प्रेस की स्वतन्त्रता इसी अनु 19 में निहित है। अनु 19(2) के द्वारा निर्बंधन है।

अनु 19(1)ख इसमें शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। इसी में जलूस निकालने का अधिकार निहित है। यह धार्मिक व राजनीतिक दोनों प्रकार का हो सकता है। 19(3) द्वारा इस पर प्रतिबंध है।

अनु 19(1)ग इसमें संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। इसी में राजनीतिक दल दबाव समूह तथा सामाजिक व संस्कृतिक संगठन बनाने का विचार निहित है। 19(4) के द्वारा इस पर प्रतिबंध है।

अनु 19(1)घ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को अवाध भ्रमण की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु 19(5) के द्वारा अनुसूचित जनजाति और सार्वजनिक हित के आधार पर प्रतिबंध है।

अनु 19(1)ङ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कहीं आवास बनाने निवास करने व बस जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। 19(5) के द्वारा इस पर प्रतिबंध है। यह जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होता है।

अनु 19(1)च निरसित

अनु 19 (1)छ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति व्यापार व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु 19(6) के द्वारा सार्वजनिक हित के आधार पर इस भी प्रतिबंध है।

अनु 20 इसमें अपराध की दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें निम्न तीन बातें कही गयी हैं।

अनु0 20(1) अपराध करते समय लागू कानून के अतिरिक्त अन्य किसी कानून से व्यक्ति को सजा नहीं दी जाएगी अर्थात यह कार्योत्तर विधियों से संरक्षण प्रदान करता है।

अनु0 20(2) एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोहरा दण्ड नहीं दिया जाएगा लेकिन यदि अपराध की प्रकृति भिन्न भिन्न हैं तो व्यक्ति को दोहरा दण्ड दिया जा सकता है अर्थात यह दोहरे दण्ड का निषेध करता है। यह प्रावधान अमेरिका से गृहीत है।

अनु 20(3) किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाहि या साक्ष्य देने के लिए वाध्य नहीं किया जाएगा।

अनु 21 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही वंचित करेगा अन्यथा नहीं।

ए0 के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्वतन्त्रता कार्यपालिका के विरुद्ध नहीं अर्थात विधायिका कानून बनाकर किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विदेश भ्रमण की स्वतन्त्रता को दैहिक स्वतन्त्रता में निहित मौलिक अधिकार मानते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। उसके अनुसार जो कानून अरिजु रिजु, आयुक्त युक्त और न्याय सम्मत नहीं हैं वह अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो स्वतन्त्रता अनु0 19 में नहीं है वह दैहिक स्वतन्त्रता में निहित है। उसने प्राण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि इसका अर्थ भौतिक अस्तित्व या पशुवत अस्तित्व से नहीं है बल्कि इसका अर्थ मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीना है। और वे सभी बातें जो किसी व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती हैं अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक अनु0 21 में निहित कई मौलिक अधिकारों की घोषणा कि जिसमें से कुछ निम्न है।

1. मत देने का अधिकार
2. सूचना पाने का अधिकार
3. एकान्तता का अधिकार
4. आश्रय प्राप्त करने का अधिकार
5. चुप रहने का अधिकार
6. जीविकोपार्जन का अधिकार
7. पेंशन पाने का अधिकार

8. समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार

9. स्वास्थ्य का अधिकार

10. स्वच्छ जल पाने का अधिकार

11. पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा का अधिकार

12. प्राथमिक शिक्षा का अधिकार

उपर्युक्त मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा घोषित है इनका दावा तब तक नहीं कर सकते जब तक ये हमें संवैधानिक अधिकार के रूप में नहीं मिलते जैसे इन्हें हम वैधानिक अधिकार की संज्ञा दे सकते है।

46 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया।

21(क) राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा।

86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2000 द्वारा संविधान के मूल कर्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खण्ड जोड़ा गया है, क्योंकि एक नवीन अनुच्छेद 21 क जोड़कर 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।

6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के बालकों के माता पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

वस्तुतः संविधान में उल्लेखित मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक उपबन्धों के माध्यम से इनके हनन होने पर संरक्षण की व्यवस्था की गयी है। लेकिन मूल कर्तव्यों का पालन न करने पर किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं है तथापि भारत के सभी नागरिकों का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है।

रणधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवाद को अनु0 14 व 16 के साथ मिलाकर पढ़ने पर सर्वोच्च न्यायालय ने समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को मौलिक अधिकार घोषित किया।

अनुच्छेद 22 इसमें बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 22(1) बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को बन्दी बनाए जाने के कारणों से तत्काल अवगत कराना होगा।

अनु0 22(2) बन्दी बनाए गए व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना होगा और बन्दी बनाए जाने का कारण बताना होगा। इसी में कहा गया है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अपने रुचि या मनपसन्द के वकील से परामर्श लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनु0 22(3) निम्नलिखित दो प्रकार से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता

क. निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति

ख. शत्रु देश के व्यक्ति पर

(क) निवारक निरोध किसी घटना के घटित होने के पूर्व ऐसी कार्यवाही करना जिससे वह घटना घटित न होने पाए निवारक निरोध कहलाता है। इसके अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर निम्न नियम लागू होता है।

(1) उसे तीन महीने तक बिना कोई कारण बताए जेल में निरूद्ध रखा जा सकता है

(2) तीन महीने बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके समकक्ष व्यक्ति की अध्यक्षता में बने एक तीन सदस्यीय परामर्श दात्री बोर्ड के समक्ष उपस्थित करना होगा।

(3) पूछे तांछ के दौरान यदि उसे बोर्ड निर्दोष पाता है तो रिहा करने का आदेश देगा और यदि दोषी पाता है तो उसे जेल में रखकर मुकदमा चलाया जाएगा। अब उस व्यक्ति को भी अपनी गिरफ्तारी के कारणों को जानने का अधिकार प्राप्त होगा और उसे बचाव के लिए न्यायालय में अभ्यावेदन करने का अधिकार होगा और अपने बचाव के लिए वकील से परामर्श भी ले सकता है।

6.3.4 शोषण के विरुद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा को बहाल करने के लिए तथा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने के लिए अनु0 23 व 24 को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया यह सरकारी व प्रावेट दोनों व्यक्तियों के विरुद्ध प्राप्त है।

अनु 23(1) मनुष्यों के क्रय विक्रय, विशेषकर स्त्रियों व बच्चों के विक्रय पर रोक लगाया जाता है तथा बेगार व बलात श्रम को निषिद्ध घोषित किया जाता है।

अनु0 23 (2) राज्य राष्ट्रीय हित में बल पूर्वक कार्य ले सकता है जैसे अनिवार्य सेना में भर्ती का अभियान।

अनु0 24 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखानों या संकटमय परियोजनाओं में नहीं लगाया जाएगा।

6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 25 से 28

भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है लेकिन इसकी परिभाषा संविधान के किसी भी अनु0 में नहीं दी गयी है। भारतीय संविधान के अनु0 25 से लेकर 28 तक में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों को व्यापक प्रावधान है। यह अधिकार अल्प संख्यक व बहुसंख्यक दोनों को ही प्राप्त है। स्वास्थ्य नैतिकता व सुव्यवस्था के आधार पर भी युक्त निर्बन्धन लगाया गया है।

अनुच्छेद 25(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तःकरण की स्वतंत्रता तथा किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने आचरण करने व प्रचार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 25(2) लौकिक राजनैतिक आर्थिक व वित्तीय आधारों पर उपर्युक्त स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है हिन्दू मन्दिरों को उसके सभी वर्गों के लिए सेवा लेने का आदेश दिया जा सकता है। इसमें सिक्ख धर्म के लोग भी शामिल हैं जैन धर्म व बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है। मन्दिरों मस्जिदों गिरिजाघरों आदि में लगने वाले लाउडस्पीकरों पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। मन्दिरों में आने वाले चढ़ावे का उसके कर्मचारी बिन्दो के बीच वितरण पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। कृपाण धारण करना सिक्ख धर्म का अंग है।

अनुच्छेद 26 इसमें धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक कार्यों की पूर्ति या प्रयोजन हेतु किसी भी संस्था की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त है। जगम(चल) व स्थावर(अचल) सम्पत्ति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है। ऐसा प्रशासन विधि के अनुसार होगा।

अनुच्छेद 27 धार्मिक कार्यों हेतु किसी व्यक्ति को कर देने या न देने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 28 राज्य निधि द्वारा पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी लेकिन ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनका प्रशासन तो राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या ट्रस्ट के अधीन स्थापित है जिनका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा देना है लेकिन ऐसी संस्थाओं के प्रार्थना सभाओं में किसी व्यक्ति को शामिल होने या न होने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता यदि व अवयस्क है तो अभिभावक की सहमति से शामिल हो सकता है।

3.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार : अनुच्छेद 29 से 30

यह बहुसंख्यकों की हिंसा से अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए संविधान निर्माताओं ने संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया यद्यपि संविधान में अल्पसंख्यक की कोई व्याख्या नहीं की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी धार्मिक एवं भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करते हुए उसकी अस्पष्ट परिभाषा से इन्कार कर दिया। उसके बारे में एक सर्वमान्य मान्यता है कि ऐसे वर्ग पर वर्गों का समूह जिसकी जनसंख्या भारत राज्य क्षेत्र के कुल जनसंख्या से 50% कम है अल्पसंख्यक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं जम्मू कश्मीर इस परिभाषा में शामिल नहीं है वहाँ हिन्दू अल्प संख्यक है। भारतीय संविधान के अनु 29 व 30 में इसका वर्णन है।

अनुच्छेद 29(1) भारत राज्य क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों की जो भाषा संस्कृति या लिपि है उसे उन्हें बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(2) धर्म मूल वंश भाषा व जाति के आधार पर किसी नागरिक को किसी संस्था में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में या भाग के अनुभाग में प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों को अपने रूचि व मनपसन्द की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 30(2) राज्य किसी संस्था को सरकारी सहायता देते समय इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगी कि यह संस्था अल्पसंख्यक वर्ग के हित में है।

3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

यह स्वयं एक मौलिक अधिकार होते हुए अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। डॉ० अम्बेडकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान निमात्री सभा में कहा यदि कोई मुझसे पूछे कि भारतीय संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसे निकाल देने पर संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो मैं इस अनुच्छेद के सिवाय अन्य किसी का नाम नहीं लूँगा।

डॉ० अम्बेडकर ने अनु० 32 को संविधान का हृदय व आत्मा बताया। अनु० 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय का संरक्षक है और अनु० 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक है।

अनुच्छेद 32 (1) व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है।

अनुच्छेद 32(2) इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश निर्देश रिटें या प्रलेख जारी कर सकता है। इसी के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है। अनु० 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय उसी प्रकार की रिटें जारी करके संविधान का अविभावक बन जाता है।

जहाँ अनु० 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिटें जारी कर सकता है अर्थात् उसे विवेकाधिकार की शक्ति प्राप्त है। वहीं पर अनु० 32 (2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही रिटें जारी कर सकता है। अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए वह रिटें लब जारी करता है जब 139(क) के अन्तर्गत संसद विधि बनाकर उसको ऐसा करने का अधिकार दे।

मूल संविधान में इस बात का प्रावधान था कि जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है केवल उसी व्यक्ति के न्यायालय जाने पर न्यायालय रिटें जारी करेगा लेकिन अब जनहितवाद के सिद्धान्त के आ जाने पर ऐसा नहीं रहा।

जनहित वाद या लोकहित वाद ;

जनहित वाद का सिद्धान्त भारत ने अमेरिका से लिया है पिपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में बैठी संविधान पीठ ने सन 1980 में एक निर्णय दिया जिसे जनहित वाद के नाम से जाना गया। इसमें कहा गया कि यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ है और वह व्यक्ति न्यायालय जाने में समक्ष नहीं है, तो यदि उसका कोई मित्र या रिश्तेदार या शुभ चिन्तक एक पत्र के माध्यम से भी न्यायालय को सूचित करे तो न्यायालय उस पत्र को उसी प्रकार से स्वीकार्य करेगा जैसे रिटिपिटेशन स्वीकार की जाती है। बशर्त यह पत्र राजनीतिक भेदभाव और पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो अन्यथा वह व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी होगा।

इस सिद्धान्त के आ जाने से न्यायपालिका ने कार्यपालिका व विधायिका के तमाम कार्यों को अवैध घोषित किया जो कि मौलिक अधिकारों के विरुद्ध थे इस लिए कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता की ओर बढ़ रही है। न्यायिक सक्रियता का संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है, यह न्यायिक पुनरावलोकन का विस्तारित रूप है। न्यायिक सक्रियता का आधार जनहित वाद है।

अनु0 32(2) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय निम्न 5 रिटें जारी करता है---

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण 2. परमादेश 3. प्रतिषेध 4. उत्प्रेषण 5. अधिकारपृच्छा
- बन्दी प्रत्यक्षीकरण(Habeas corpus(सशरीर प्राप्त करना))-किसी बन्दी व्यक्ति के न्यायलय के समक्ष लाकर उसके गिरफ्तारी का कारण जानना ,यदि कारण वैध नहीं है तो उसे मुक्त करना | यह रीत निवारक नजर्बदियों पर लागू नहीं होती हैं
 - परमादेश (Mandamus(हम आग्या देते हैं))-व्यक्ति अथवा संस्था को कर्तव्य पालन के आदेश दिए जाते हैं(यह आदेश राष्ट्रपति और राज्यपाल को नहीं)
 - प्रतिषेध (Prohibition-मना करना)-उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता हैजिसका उद्देश्य अधीन न्यायलय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से रोकना है
 - उत्प्रेषण (Certiorari- और अधिक सूचित होना)- तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है,जिसमे अधीनस्थ न्यायलय से वहाँ चल रहे वाद से सम्बंधित कागजात मांगे जाते हैं |प्रतिषेध रोग के रूप में ,उत्प्रेषण उपचार के रूप में
 - अधिकार पृच्छा –(Quo-warranto)- इस लेख द्वारा न्यायलय किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने वाले को वह कार्य करने से रोकता है,जिसके वह कानूनी रूप से योग्य नहीं हैं

यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय ऐसी जारी कर सकता है।

अनुच्छेद 33

संसद विधि बनाकर सशस्त्र बलों (अर्द्धसैनिक बल) सेना बलों व पुलिस बलों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।ऐसा इसलिए कि उसमें परस्पर अनुशासन बना रहे जिससे वे अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

अनुच्छेद 34

भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में ऐसा विधि (मार्शल ला) लागू है तो संसद कानून बनाकर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकती है।

अनुच्छेद 35

मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद विधि बना सकती है इसी अनु0 के अन्तर्गत अस्पृश्यता अपराध अधिनियम जैसे कानून बने।

3.4 मूल कर्तव्य

यदि किसी सभ्य समाज के प्रमुख लक्षणों में एक है उसके नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकार, जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है तो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसके नागरिकों के कर्तव्य। क्योंकि सभी के अधिकारों की पूर्ति तभी हो सकती है जब सभी अपने कर्तव्यों के अनुपालन के प्रति भी संवेदनशील हों।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध ही मौलिक कर्तव्यों की याद दिलाता है और जब कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता ग्रहण करता है तो उसे मौलिक कर्तव्यों सम्बन्धी शपथ लेनी पड़ती है। समाजवादी देश कर्तव्यों पर अधिक बल देते हैं जबकि उदारवादी देश अधिकारों पर अधिक बल देते हैं।

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था। 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में भाग 4 (क) और अनु0 51(क) जोड़ा गया और इसमें 10 मौलिक कर्तव्य रखे गये ये मौलिक कर्तव्य सम्बन्धी निर्णय स्वर्ण सिंह समिति की अध्यक्षता में लिए गए थे। ये पूर्व सोवियत संघ से लिए गये हैं। 86 वें अधिनियम द्वारा 2002 एक और मौलिक कर्तव्य जुड़ जाने से अब इनकी संख्या 11 हो गयी है।

मौलिक कर्तव्य न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं अर्थात् न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते इसके बावजूद व्यक्ति के लिए इसका पालन करना अनिवार्य है इसका उल्लंघन होने पर संसद कानून बनाकर दण्ड निर्धारित कर सकती है।

नयी राष्ट्रीय ध्वज आचार संहिता 2002 के द्वारा यह नियम निर्धारित कर दिया गया है कि 15 अगस्त व 26 जनवरी के अलावा अन्य दिवस पर भी राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सकता है किन्तु वह जमीन और पानी से छूटा हुआ नहीं लगाना चाहिए।

अनु 51(क) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा।

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों संस्थाओं राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
2. स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की प्रभुता एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसके अक्षुण्ण रखे।

4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान मातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।
6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत बन झील नदी और वन्य जीव है रक्षा करे और उसका सबर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊचाइयों को छू ले।
11. यदि माता पिता या संरक्षक हैं ,छह वर्ष की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अभ्यास प्रश्न

1. मूल संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी थी ?
2. वर्तमान समय में मूल अधिकारों की संख्या कितनी हैं?
3. अनुच्छेद ३००(क) किसका प्रावधान करता है?
4. मूल कर्तव्यों का संविधान में प्रावधान किसकी सिफारिस से किया गया है?
5. मूल कर्तव्यों की संख्या कितनी हैं?

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है। कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है।

चूँकि किसी का अधिकार अन्य का कर्तव्य होता है अर्थात् अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के पहलु हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

3.6 शब्दावली

मौलिक अधिकार - वे अधिकार जो व्यक्तित्व के विकास में मूलभूत होते हैं। जिनके बिना विकास नहीं हो सकता।

निवारक निरोध - भविष्य में अपराध करने की आशंका से किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी जिससे अपराध को रोका जा सके निवारक निरोध कहलाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 7, 2. 6, 3. संपत्ति का कानूनी अधिकार, 4. स्वर्ण सिंह समिति के सिफारिस के आधार पर, 5. 11

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली
2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी.एच. आई. लार्निंग, नई दिल्ली।
3. बसु, डी.डी. (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान
2. जैन, डॉ. पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. सिंह, डॉ. वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं? स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या कीजिये।
2. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार की विवेचना कीजिये।

इकाई .4 : राज्य के नीति निर्देशक तत्व

इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 नीति निर्देशक तत्व
 - 4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर
 - 4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व
- 4.4 सारांश
- 4.5 शब्दावली
- 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 3 के अध्ययन के उपरान्त हम जान सके हैं कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूँकि किसी का अधिकार अन्य का कर्तव्य होता है अर्थात् अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

इस इकाई में हम संविधान के भाग 4 में उपबंधित राज्य के नीति निदेशक तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से इन निदेशक तत्वों के माध्यम से एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया है। यद्यपि ये निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। लेकिन हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि देश में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है जिसमें सरकार की जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायित्व होता है। ऐसी स्थिति में इन निदेशक तत्वों कि अनदेखी कोई भी सरकार नहीं कर सकती है। इन्हीं पक्षों का हम अध्ययन हम इकाई के अंतर्गत करेंगे।

4.2 उद्देश्य

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि नीति निदेशक तत्वों को क्यों संविधान में उपबन्ध किया।
2. इसके अध्ययन से हम जान सकेंगे कि किन-किन निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन हुआ उसके परिणाम क्या रहें
3. इसके अध्ययन से हम जान सकेंगे कि इसमें कल्याणकारी राज्य की अभिव्यक्ति होती है।
4. हम जान सकेंगे कि मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में क्या सम्बन्ध है।

4.3 नीति निर्देशक तत्व

राज्य की नीतियां क्या होनी चाहिए और कैसी होनी चाहिए इसी को बताने वाले दूसरे तत्व का नाम नीति निर्देशक तत्व है अर्थात् नीति निर्देशक तत्व के आदर्श हैंजिनके आधार पर राज्य अपनी नीतियां तय करते हैं नीति निर्देशक तत्व का उद्देश्य भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व को संविधान की आत्मा के रूप में देखा था मौलिक अधिकारों का उद्देश्य एक स्वतन्त्र एवं समता मूलक समाज की स्थापना करना है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना है तथा ऐसी वाह्य परिस्थितियों का सृजन कर सके। मौलिक अधिकार एक साधन हैं और नीति निर्देशक तत्व एक लक्ष्य।

भारतीय संविधान के भाग-4 में अनु036 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्वों का व्यापक प्रावधान किया गया है। अनु0 36 व 37 नीति निर्देशक तत्व की प्रकृति बताते हैं। अनु0 38 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख है अर्थात् मूल संविधान में इसका उल्लेख कुल 14 अनु0 में था। 42 वें अधिनियम द्वारा अनु0 39(क) अनु 43 (क) और 48 (क) जुड़ जाने से अब कुल 17 अनुच्छेद हो गया है। संविधान की प्रस्तावना में निहित आदर्शों अर्थात् सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय को इसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं साकार रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है। अर्थात् ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। इसे लागू करना देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों पर निर्भर है जैसे देश में भौतिक संसाधन बढ़ते जाएंगे राज्य उसे अपनी नीति का हिस्सा बनाता जाएगा। नीति निर्देशक तत्वों को पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

संविधान निर्मात्री सभा में नीति निर्देशक तत्व पर बहस के दौरान इसकी आलोचना करते हुए कुछ लोगों ने इसे धार्मिक उपदेश या नैतिक शिक्षा बताया। T. कृष्णमाचारी ने इसे सच्ची भावनाओं का कूड़ादान बताया K.T. शाह के अनुसार नीति निर्देशक तत्व एक ऐसे चेक की भाँति हैंजिसका भुकतान बैंक की सुविधा पर निर्भर है।

डॉ० अम्बेडकर ने उपर्युक्त आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि भले नीति निर्देशक तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है लेकिन इसके पीछे सबसे बड़ी शक्ति जनमत की है और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाये संविधान लागू होने से लेकर आज तक सरकार ने इसे हर सम्भव से लागू कराने का प्रयास किया है इसके बावजूद अधिकांश नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा हुई है।

नोट - नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक आदेश हैं जो कि राज्य को कुछ कार्य करने का आदेश देते हैं।

अनुच्छेद 36 इसमें राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है और कहा गया है कि यहाँ राज्य शब्द का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद 37 यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं इसके बावजूद वे देश के शासन में मूलभूत हैं और राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाए।

उपर्युक्त बातों से निम्न 2 अर्थ निकलता है-

1. ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते।

2. यहां कर्तव्य इच्छा का नहीं बल्कि अनिवार्यता का प्रतीक है।

अनुच्छेद 38 इसका उद्देश्य भारत में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है इसमें लोककल्याणकारी राज्य का विचार निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनुच्छेद 38 (1) राज्य लोककल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएगा जिसमें देश के सभी नागरिकों के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

अनुच्छेद 38(2) राज्य सामान्यतः आय की असमानता को कम करने विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए वर्गों व समूहों के बीच प्रतिष्ठा सुविधाओं व अवसर की असमानता को भी कम करने का प्रयास करेगी।

इसे 44 वें अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य भारत में समाजवाद लाना है इस पर जय प्रकाश नारायण का पूर्ण प्रभाव है।

अनुच्छेद 39 इसके द्वारा भारत में आर्थिक लोकतन्त्र है कि राज्य अपनी आर्थिक नीतियों का निर्धारण निम्न प्रकार से करेगा।

अनुच्छेद 39(a) पुरुषों और स्त्रियों अर्थात् सभी कर्मकारों को अपनी जीविका प्राप्त करने का पर्याप्त साधन मिल सके।

अनुच्छेद 39(b) देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बटा होना चाहिए कि वह समुदाय के पर्याप्त हित का साधन बन सके।

अनुच्छेद 39(c) देश की आर्थिक नीतियों का संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसका एक स्थान पर अहितकारी संकेन्द्र न होने पाए।

अनुच्छेद 39(d) 39 (2) व 39(3) के अन्तर्गत भारत में बैंको का राष्ट्रीकरण जमींदारी उन्मूलन और प्रिवी पर्सेस को समाप्त किया गया।

अनुच्छेद 39(e) इसमें सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है लेकिन यदि कार्य की प्रकृति भिन्न हैं तो वेतन में असमानता हो सकती है।

अनुच्छेद 39(f) कर्मकारों के स्वास्थ्य व शक्ति तथा सुकुमार बालकों की अवस्था का दुरुपयोग न होने पाए तथा राज्य कोई ऐसी परिस्थिति न पैदा करे जिससे विवश होकर उन्हें किसी ऐसे रोजगार में जाना पड़े जो कि उनके आयु एवं शक्ति दोनों के विपरीत हो।

अनुच्छेद 39(g) सुकुमार बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए गरिमामय वातावरण का सृजन किया जाए तथा सुकुमार बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा की जाए।

अनुच्छेद 39(7.1) इसमें समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया है। दूसरे शब्दों में राज्य का विधिक तन्त्र इस प्रकार से कार्य करेगा कि देश के सभी नागरिकों को समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो सके। किसी को भी आर्थिक अयोग्यता या अन्य कारण से इससे वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 40 राज्य पंचायतों का संगठन करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार देगा जिसमें वे एक स्वायत्त शासन की इकाई की दिशा में विकसित हो सके।

इस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है। 73 वें व 74 वें अधिनियम के द्वारा संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दिया गया लेकिन अभी भी पंचायतें स्वायत्त संस्था के रूप में विकसित नहीं हो सकी हैं। वे आर्थिक रूप से विपन्न हैं पंचायतें भी राज नीति का अखाड़ा बनती जा रही हैं। अज्ञानता और अशिक्षा पंचायती राज के विकास में बाधक है।

अनुच्छेद 41 राज्य विकास एवं क्षमता की सीमा भीतर कुछ मामलों में काम पाने शिक्षा पाने बेकारी अंगहानि तथा इसी प्रकार की अन्य अयोग्यता होने पर राज्य उसे दूर करने का प्रयास करेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में डवा आगनबाड़ी, प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान आपरेशन बोर्ड योजना राष्ट्रीय एड्स नीति विकलांगों को छात्रवृत्ति एवं रिकशा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्यक्रम चलाए।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्यायसंगत तथा मान्योचित दशा में सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा प्रसूति सहायता उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 43 राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मचारियों के उचित वेतन शिष्ट जीवन स्तर काम के घंटे आदि को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा तथा इसी में कहा गया है। राज्य ग्रामीण कुटीर उद्योगों को सहकारी एवं व्यक्ति प्रोत्साहन भी देगा।

अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों के भाग लेने व्यवस्था का प्रावधान। इसे 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 44 इसमें कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार संहिता होनी चाहिए। धर्म निरपेक्षता को व्यवहारिक रूप देने के लिए इसे संविधान में शामिल किया गया है। लेकिन राजनीतिक कारणों से इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका। हिन्दूओं के लिए हिन्दू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम व दहेज निषेध जैसे कानून बने हैं। लेकिन मुसलमानों के लिए ऐसा कोई कानून नहीं है। साहबानों के केस में न्यायालय ने इसे लागू कराने की बात कही थी राजीव गांधी ने 1986 में ऐसा कानून बनवाया भी था लेकिन मुसलमानों के व्यापक विरोध के कारण सरकार ने इसे समाप्त कर दिया। भारत सरकार ने तीन तलाक निषेध कानून पारित कर मुस्लिम महिलाओं के लिए गरिमामय जीवन के की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है।

अनुच्छेद 45 संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा

86वें अधिनियम के द्वारा इसे मौलिक अधिकार बनाकर इसे 21(क) में रख दिया गया है और इसके स्थान पर अनु0 45(क) जोड़ा गया है।

अनुच्छेद 45(क) राज्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर विशेष ध्यान देगा।

अनुच्छेद 46 राज्य के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक एवं शैक्षिक हितों को बढ़ावा देगा तथा समाज के शोषण और अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।

इस पर डॉ0 अम्बेडकर का प्रभाव है इसे क्रियान्वित करने के लिए SC व ST को निःशुल्क कोचिंग संस्थान छात्रवृत्ति प्रतियोगी परिक्षाओं के फार्म में भारी छूट तथा हरिजन एक्ट जैसे कानून का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 47 राज्य लोगों के पोषाहार स्तर व जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा औशधीय प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औशधि को छोड़कर शेष मादक एवं पेय पदार्थों पर प्रतिबन्ध लगायेगा। इसे राजनीतिक कारणों से अभी तक लागू नहीं किया जा सका।

अनुच्छेद 48 राज्य कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से बढ़ावा देगा तथा गायों बछड़ों दुधारू पशुओं वाहक पशुओं के नस्लों को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा इनके बंध आदि पर प्रतिबन्ध लगायेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में हरित क्रान्ति पीली क्रान्ति, नीली क्रान्ति राष्ट्रीय कृषि नीति जैव प्रौद्योगिकी नीति सुधार कार्यक्रम, कृषि विश्व विद्यालयों की स्थापना तथा नये किस्म के बीज एवं खाद्य का निर्माण आदि हुआ। कई राज्यों ने गोवध आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून भी बनाए।

अनुच्छेद 48(क) राज्य पर्यावरण का संरक्षण एवं संवर्धन करेगा। तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करेगा। इसको क्रियान्वित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा राष्ट्रीय वन्य नीति जैसे कानून बनाये गए।

अनुच्छेद 49 राज्य संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक कलात्मक वस्तुओं और ऐतिहासिक घरों की लुन्ठन विरूपण एवं विकृति से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 50 इसमें कहा गया है कि कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच कार्यों में पृथक्करण होगा। आज भी इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका प्रायः यह देखा जाता है कि कार्यपालिका के बहुत से ऐसे कार्य हैं जो न्यायपालिका करती नजर आती हैं और न्यायपालिका के कार्य कार्यपालिका करती नजर आती है।

अनुच्छेद 51 राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रयत्न करेगा। आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से निपटाएगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि कानूनों एवं वाध्यताओं का पालन करेगा।

इस पर पं0 नेहरू का प्रभाव है इसमें भारत की विदेश नीति का उल्लेख है | इसे लागू करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी पंचशील समझौता किया | संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था व्यक्त किया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया और निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया।

4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर

1. मौलिक अधिकार राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात ये राज्य के कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाते हैं जबकि नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक है अर्थात राज्य को कुछ कार्य करने के लिए आदेश देते हैं।
2. मौलिक अधिकार वाद योग्य हैं अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व वाद योग्य नहीं हैं अर्थात यह न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।
3. मौलिक अधिकार निरंकुश व सीमित है इन पर आपात काल में प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व निरंकुश और असीमित हैं इन पर कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता।
4. मौलिक अधिकारों का स्वरूप केवल राष्ट्रीय है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का स्वरूप राष्ट्रीय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भी है।

4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व

मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व के बीच विवाद सर्वप्रथम चम्पाकम दोराई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सन 1951 में आया इस मामले में न्यायालय ने कहा मौलिक अधिकार वाद योग्य हैं अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्वों के साथ ऐसी कोई बात नहीं है इसलिए मौलिक अधिकार को नीति निर्देशक तत्व पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लगभग यही बात केशव सिंह बनाम विहार राज्य व सज्जन कुमार बनाम राजस्थान राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा।

गोलकानाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसद को मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। यह निर्णय 9 न्यायाधीशों की संविधान ने 5:4 के बहुमत से दिया था।

1971 में संसद ने 24 वां 25वां अधिनियम पारित किया। 24 अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि संसद को अनु0 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त है और 25 वें अधिनियम द्वारा संविधान में अनु0 31 (ग) जोड़ते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि अनु0 39 (b) और 39(c) को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 24वें व 25 वे अधिनियम पर सुनवायी करते हुए दोनों को वैध ठहराया लेकिन 24 वें के सन्दर्भ में कहा कि वह संविधान के मूल ढांचे को नष्ट न करता हो पहली बार इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढांचे शब्द का प्रतिवादन किया संविधान का मूल ढांचा का आधार न्यायिक निर्वचन है। **केशवानन्द भारती** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ 13 न्यायाधीशों की बैठी थी जिसमें 7:6 के अनुपात से निर्णय हुआ।

1976 में 42 वां अधिनियम पारित किया गया जिसमें कहा गया कि अनु0 368 के अन्तर्गत संशोधन का असीमित अधिकार है। इसकी संवैधानिक वैधता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती तथा ये कहा कि सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

42 वें अधिनियम पर सुनवायी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980** के मामले में 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें कहा गया था कि इसकी वैधता को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का मूल ढाँचा है और 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। 25 वे अधिनियम को वैध ठहराते हुए केवल अनु0 39(b) और अनु0 39(c) को ही मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता बताया।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। यह प्रावधान किस अनुच्छेद में है?
2. भारतीय संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है?
3. सभी कर्मचारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है किस अनुच्छेद में है?
4. अनुच्छेद 39 समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किस अनुच्छेद में किया गया है?
5. पंचायतों के गठन का निर्देश किस अनुच्छेद में किया गया है?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में हमने यह पाया है कि किस प्रकार से किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निर्देशक तत्व का प्रावधान किया है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात् सरकार के द्वारा इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायालय में नहीं जा सकते हैं। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है। और नियतकालिक चुनाव में पुनः जनता के जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए। इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए हैं उनकी अनदेखी सरकार नहीं कर सकती है। जैसा कि पंचायतों का गठन और महिलाओं और बच्चों तथा समाज के पिछड़े वर्गों के लिए भी नीतियां बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि न्यायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं हैं परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

4.5 शब्दावली

कल्याणकारी राज्य - जिस राज्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को वे सुविधाएं प्रदान की जाती है, जिन्हें समक्ष लोग स्वयं प्राप्त करते हैं।

सामाजिक न्याय - समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले को प्राथमिकता के आधार पर बिना की जाति धर्म के भेद भाव किये आवश्यक सेवाएं प्रदान करना है।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद 51, 2. भाग-4 , 3. अनुच्छेद 39(e) 4. अनुच्छेद 39 5. अनुच्छेद 40

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली
2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी.एच. आई. लार्निंग, नई दिल्ली।
3. बसु, डी.डी. (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।
4. मंगलानी, डॉ. रूपा – भारतीय शासन और राजनीति

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान
2. जैन, डॉ. पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. सिंह, डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नीति निदेशक तत्व राज्य को कल्याण कारी राज्य बनाने लिए किया गया भागीरथ प्रयास हैं। स्पष्ट कीजिये।
2. नीति निदेशक तत्व और मौलिक अधिकारों में अंतर करते हुए, भारत में इनके महत्व की विवेचना कीजिये।

इकाई 5 - भारतीय संघ का स्वरूप (Nature of Indian Federation)

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं

5.3.1 केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

5.3.2 लिखित निर्मित और कठोर संविधान

5.3.3 स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

5.4 भारतीय राजव्यवस्था में एकात्मक तत्व

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय राजव्यवस्था के अध्ययन के क्रम में सबसे महत्वपूर्ण विषय वस्तु में शासन व्यवस्था के रूप में अपनाए जाने वाले संघात्मक व्यवस्था है। इस संदर्भ में देश और विदेश के राजनीति विज्ञान के मर्मज्ञ के मातृ भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी यहां इस बात को स्पष्ट रूप से उल्लिखित करना आवश्यक है कि संविधान सभा में लंबी बहस के उपरांत संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने पर बल दिया गया। जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि- इंडिया भारत अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा। भारतीय संविधान में कहीं पर भी फेडरेशन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके स्थान पर 'यूनियन आफ स्टेट्स' शब्द का प्रयोग किया गया है। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर ने इस पर अपनी टिप्पणी करते हुए कहा था कि "यद्यपि संविधान की संरचना संघात्मक है किंतु समिति ने राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि इसके कुछ लाभ हैं। राज्यों का संघ अर्थात् भारत इकाइयों के बीच करार का परिणाम नहीं है, साथ ही यह किसी इकाई को भारत से अलग होने का अधिकार प्रदान नहीं करता है।

भारतीय राजव्यवस्था के अध्ययन के क्रम में हम पाते हैं कि एक तरफ इसमें ऐसे प्रावधान मिलते हैं जो संघात्मक शासन व्यवस्था की मूल विशेषताओं को प्रकट करते हैं वहीं दूसरी तरफ एकात्मक शासन की मूल तत्वों को प्रकट करने वाले विषय भी भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाते हैं। इस बात को लेकर के विद्वानों में बहुत ही मतभेद रहता है। कुछ ने इसे एक ऐसा संघ जिसका झुकाव एकात्मकता की तरफ है, कहा है। किसी ने एकात्मक और संघात्मक के मिश्रण के रूप में भारतीय संविधान को संबोधित करने का कार्य किया है।

संविधान सभा के सदस्य डॉ. देशमुख ने कहा था भारतीय संघ न तो संघात्मक है और न ही एकात्मक। के.सी. वहीयर का मत भी उल्लेखनीय है उन्होंने कहा कि 'भारतीय संघ अधिक से अधिक अर्थ संघ है'। अंत में संविधान के संघात्मक स्वरूप के संदर्भ में संविधान सभा की प्रारूप समिति प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर का कथन अत्यंत प्रासंगिक है जो इस प्रकार है- भारतीय संविधान को संघात्मक बताते हुए स्पष्ट किया था कि "यह एक संघीय संविधान है। केंद्र तथा राज्य दोनों का गठन संविधान द्वारा हुआ है और दोनों की शक्ति और प्राधिकार का स्रोत संविधान है। अपने क्षेत्राधिकार में कोई किसी के अधीन नहीं है, एक का प्राधिकार दूसरे का पूरक है।

5.2 उद्देश्य

इस प्रकार से इस इकाई में हम भारतीय संघ के स्वरूप के अध्ययन के क्रम में

१. भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाने वाले मुख्य संघात्मक तत्वों का अध्ययन करेंगे
२. भारतीय राजव्यवस्था में पाए जाने वाले एकात्मक तत्वों का अध्ययन करेंगे
३. यह अध्ययन करेंगे कि संघात्मक शासन अपनाने के साथ वह कौन से कारण, वह कौन से लक्षण हैं जिसकी वजह से एकात्मक शासन को अपनाने का भी कार्य किया गया

5.3 संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं

सामान्य स्थिति में भारतीय राजव्यवस्था संघात्मक रूप से परिचालित होती है। भारतीय संघ की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित विन्दुओं में करेंगे। संघात्मक शासन की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार है

1. केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

2. लिखित निर्मित और कठोर संविधान अर्थात् संविधान की सर्वोच्चता

3. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

5.3.1 केंद्र और राज्य के बीच शक्ति विभाजन

जैसा कि हमने कहा कि भारत में संघात्मक शासन के अपनाने के कारण यह है कि भारत में बहुत सी विविधता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाने पर जोर दिया गया, क्योंकि संघात्मक शासन प्रणाली में एक लिखित निर्मित और कठोर संविधान के द्वारा केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। केंद्र सरकार अपने विषय क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक संविधान की मर्यादा में रहते हुए कार्य करती है तथा राज्य सरकार भी उसी को आवंटित विषयों की सीमा तक स्वतंत्रता पूर्वक संवैधानिक मर्यादा में रहते हुए अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। इस प्रकार से सामान्य स्थिति में सामान्य परिस्थिति में केंद्र और राज्य सरकारें दोनों अपने विषय क्षेत्र में संविधान के द्वारा निर्धारित सीमा के अंतर्गत स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्य दायित्व का निर्वहन करती है। इसे एक बात और स्पष्ट हो जाती है कि संघात्मक शासन में दोहरी शासन प्रणाली पाई जाती है अर्थात् केंद्र के शासन और विभिन्न इकाइयों का शासन जो कि हमारे देश में विद्यमान है अर्थात् संघीय स्तर पर भारत सरकार का शासन और इकाई स्तर पर विभिन्न प्रांतों की सरकार है जो अपने अपने क्षेत्र में संविधान के द्वारा प्राप्त अधिकारों की सीमा में रहते हुए अपने दायित्वों का निर्माण करती हैं। शक्ति विभाजन के सिद्धांत के अनुसरण में तीन सूचियों का उल्लेख किया गया है। संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। इसके अतिरिक्त एक अवशिष्ट शक्तियों की बात की गई है। संघ सूची पर कानून बनाने का और उससे प्रशासन करने का अधिकार संघ सरकार को और राज्य सूची के विषयों पर विधायन और उस पर प्रशासन करने का अधिकार राज्य सरकार को। समवर्ती सूची पर राज्य और केंद्र सरकार दोनों को कानून बनाने का अधिकार है परंतु विवाद की स्थिति में अर्थात् संघ द्वारा बनाए गए कानून और राज्य द्वारा बनाए गए कानून में विवाद उत्पन्न होने की स्थिति में संघ के द्वारा बनाए गए कानून निर्णायक होते हैं। इसके अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियों की बात की गई है यहां पर भारतीय संविधान निर्माताओं ने कनाडा के संविधान का अनुसरण करते हुए अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को प्रदान किए। जबकि संघात्मक शासन के एक आदर्श मॉडल के रूप में अमेरिका को जानते हैं। यहां पर विशेष शक्तियां राज्यों को प्रदान की गई हैं। इस प्रकार से दिखाई देता है कि संघ और राज्य के बीच के शक्ति विभाजन में झुकाव केंद्र की तरफ है अर्थात् केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाने का यत्न किया गया है।

5.3.2 लिखित निर्मित और कठोर संविधान

संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषताएं कि इसमें संविधान के सर्वोच्चता के सिद्धांत का पालन किया जाता है अर्थात् शासन के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी को संविधान के द्वारा शक्ति प्राप्त होती हैं तथा इस प्रकार के विस्तृत प्रावधान किए जाते हैं जिससे शासन के अंगों के बीच मतभेद और अंतर्विरोध की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सके क्योंकि भारतीय समाज में बहुत सारी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि की भिन्नता पाई जाती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सभी पक्षों को शामिल करने का प्रयास भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान में किया गया है अर्थात् भारत की विविधता को भारतीय संविधान के द्वारा समायोजित करने की कोशिश की गई है, कोशिश ही

नहीं बल्कि सफल कोशिश की गई | इसके कारण से भारत का संविधान दुनियाँ का सर्वाधिक विस्तृत संविधान है भारत का संविधान न तो बहुत ही कठोर है जैसा कि अमेरिका का संविधान और ना ही बहुत ही सरल है जैसा कि ब्रिटिश संविधान | इस प्रकार से भारत के संविधान निर्माताओं ने इस बात की कोशिश की है की आवश्यकता अनुसार भारत की संसद के द्वारा संविधान में संशोधन की जाए तथा इसके साथ इस बात की भी कोशिश की गई है कि सामान्य बहुमत का लाभ उठाते हुए कोई सरकार संविधान की भावना के विपरीत मूलभूत ढांचे को समाप्त करने की हद तक परिवर्तन करने की स्थिति में न रहे।

इसलिए बहुत सारे ऐसे प्रावधान जो संघात्मक व्यवस्था से संबंधित तथा इस प्रकार से अन्य व्यवस्थाएं हैं जिसके संदर्भ में बड़ी कठोरता के साथ परिवर्तन का अधिकार संविधान निर्माताओं ने संसद को प्रदान किया है | इस प्रकार से भारतीय संविधान निर्माताओं ने कठोर संविधान और लचीले संविधान के बीच के मार्ग को अपनाया है

३. स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

संघात्मक शासन में केंद्र और राज्य के शासन की स्थापना एक लिखित निर्मित और कठोर संविधान के द्वारा की जाती है जिसमें केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है तथा अवशिष्ट शक्तियां कुछ जैसे अमेरिका में राज्यों को है और कनाडा का अनुसरण करते हुए भारत में संघ के पास है | परंतु देश समय के साथ नए नए विषय उत्पन्न होते हैं उन विषयों के संदर्भ में विषयक्षेत्र के विवाद तथा केंद्र -राज्य के मध्य किसी भी प्रकार के विवाद राज्य राज्यों के मध्य विषय क्षेत्र या अन्य किसी भी विवाद तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए संघात्मक शासन का अनुसरण करते हुए भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक स्वतंत्र निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की है , जो व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के कार्यों का परीक्षण संविधान में उल्लिखित उपबंधों के आधार पर करती है और यदि वह संविधान में उल्लिखित उपबंधों के विपरीत पाती है तो उन्हें अधिमन्य घोषित करते हुए निरस्त घोषित करती है तथा उनके अनुकूल पाते हुए उनकी व्यवस्था की घोषणा करती है | इस प्रकार से संविधान के संरक्षक के रूप में भारत में न्यायपालिका संघात्मक शासन की भावना के अनुरूप अपना कार्य करती है। न्यायपालिका के संदर्भ में भी अगर भारत की न्यायपालिका का ढांचा देखा जाए तो निश्चित रूप से यह भी एक एकात्मक तत्व या एकात्मक झुकाव लिए हुए हैं क्योंकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी भारत के राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है भारत के न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालय एकीकृत है।

भारतीय राजव्यवस्था में कुछ अन्य विशेषताएं पाई जाती हैं जैसे संघात्मक शासन में जो संघीय संसद होती है उसमें राज्यों के प्रतिनिधित्व करने वाला सदन भी पाया जाता है | जैसा कि अमेरिका में सीनेट है उसी प्रकार से भारत की संसद में उच्च सदन अर्थात् राज्यसभा राज्यों का सदन है इस प्रकार से यह संघात्मक शासन की भावना के अनुरूप है | यद्यपि इन में समानता का सिद्धांत का पालन न करके यह इनको प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है। इसी के साथ-साथ भारतीय संविधान में संविधान संशोधन की जो प्रणाली है वह भी निश्चित रूप से काफी हद तक संघात्मक शासन के सिद्धांतों और उसकी विशेषताओं के अनुरूप है क्योंकि भारतीय संविधान में संघात्मक ढांचे से

संबंधित जो कुछ भी उपबंध है उसमें संशोधन के लिए नितान्त आवश्यक है कि संसद के पारित होने के उपरांत कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों की स्वीकृति भी उस पर आवश्यक है, तभी वह राष्ट्रपति के पास उनकी अनुमति उनकी सहमति, उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारतीय संविधान में भारतीय राजव्यवस्था में वह सभी तत्व पाए जाते हैं जो संघात्मक शासन की मूल विशेषताओं के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं

5.4 भारतीय राजव्यवस्था में एकात्मक तत्व

१. शक्तियों के वितरण में केंद्र का मजबूत होना

जैसा कि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं केंद्र और राज्य के बीच शक्तियों के विभाजन में यह विभाजन केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाता है क्योंकि केंद्र को राष्ट्रीय महत्व के विषय पर कानून बनाने का अधिकार है तथा समवर्ती सूची पर केंद्र के द्वारा बनाए गए कानून निर्णायक होते हैं और अवशिष्ट शक्तियां भी केंद्र को प्रदान की गईं। इसके साथ-साथ कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी केंद्र को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शक्ति विभाजन के सिद्धांत का अनुसरण तो किया गया है लेकिन एक शक्तिशाली केंद्र के निर्माण का प्रयास भी किया गया है।

इस संदर्भ में डॉक्टर बी. आर. अंबेडकर का एक कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है उन्होंने कहा था कि मैं 1935 के अधिनियम के द्वारा स्थापित केंद्र से भी अधिक शक्तिशाली केंद्र की स्थापना के पक्ष में हूँ।

२. नए राज्यों के निर्माण तथा वर्तमान राज्यों के सीमा क्षेत्रों और नाम में परिवर्तन करने की शक्ति संसद के पास होना

भारत के संविधान के अनुच्छेद 1 से अनुच्छेद 4 तक में इस संदर्भ में विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि भारत के संसद दो या दो से अधिक राज्यों या उनके राज्यों राज्यों के कुछ भागों को मिलाकर या किसी प्रदेश के किसी भाग को, से अलग करके किसी राज्य क्षेत्र को घटा सकती हैं, बढ़ा सकती है, उसकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है तथा राज्य के नाम में भी परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार राज्य के स्वरूप के निर्माण का अधिकार भारत की संसद को पर संविधान निर्माताओं ने प्रदान किया है इस दृष्टि से भारत का केंद्र बहुत ही मजबूत है।

३. राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र के द्वारा

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। राज्य के स्तर पर भी इस बात का ही अनुसरण किया गया है जैसा कि संघ के स्तर पर राष्ट्र की कार्यपालिका के प्रधान राष्ट्रपति हैं। उसी प्रकार से राज्य की कार्यपालिका के प्रधान राज्यपाल होते हैं जो कि राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। यद्यपि राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका में नाम मात्र की कार्यपालिका के रूप में है। लेकिन वह रबर स्टैप की तरह नहीं है कुछ विशेष स्थितियां ऐसी हैं जब राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियां बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। खासतौर

से तब जब किसी दल को निम्न सदन में बहुमत न प्राप्त हो ऐसी स्थिति में राज्यपाल को या विवेक संवत निर्णय स्वयं लेना होता है कि कौन ऐसा दल और नेता है जो एक स्थाई और स्थिर सरकार नियतकाल के लिए दे सकता है। साथ ही एक महत्वपूर्ण अधिकार राज्यपाल को यह भी है कि राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार चलता है या नहीं इस बात का संज्ञान राज्यपाल ले सकता है और इसकी रिपोर्ट राष्ट्रपति को रोकता है। जिसके आधार पर यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हो जाते हैं तो राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार से राज्यपाल एक बहुत ही महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भूमिका में आ जाते हैं। क्योंकि राज्यपाल की नियुक्ति जैसा कि हमने कहा राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है और राष्ट्रपति केंद्र की कार्यपालिका यानी अखिल भारतीय कार्यपालिका का प्रमुख है इसलिए राज्यपाल के माध्यम से केंद्र का नियंत्रण राज्य पर बढ़ जाता है जो संघात्मक शासन की भावना के अनुकूल नहीं है।

4.आपातकालीन उपबंध

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति जो कि संघ की कार्यपालिका का प्रमुख है। इसलिए देश पर किसी भी संकट की स्थिति में देश के पूरे हिस्से में या किसी भाग में राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियां प्रदान की गई हैं। जिसमें से अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल जो युद्ध, बाह्य आक्रमण, सशस्त्र विद्रोह के कारण घोषित किया जा सकता है। तथा अनुच्छेद 356 में राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा की जा सकती है। इसके साथ ही अनुच्छेद 360 के द्वारा वित्तीय आपात की घोषणा राष्ट्रपति के द्वारा की जा सकती है। इस प्रकार के घोषणाओं के लागू होने की स्थिति में केंद्र सरकार का नियंत्रण राज्य सरकार पर बहुत अधिक हो जाता है और राज्य सरकार के राज्य सूची के विषयों में भी केंद्र का हस्तक्षेप हो जाता है। इस प्रकार से इस आपातकालीन स्थितियों में संघात्मक ढांचा एकात्मक में परिवर्तित हो जाता है, और केंद्र सरकार और अधिक शक्तिशाली हो जाती है।

5.संघ सरकार के द्वारा राज्य पर नियंत्रण से सम्बंधित अन्य प्रावधान

अनुच्छेद 249 के अनुसार भारतीय संसद का उच्च सदन राज्यसभा यदि राज्य सूची के विषय पर दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दें कि राष्ट्रीय हित में इस पर कानून बनाना नितांत आवश्यक है, जिसका अधिकार संसद को देते हैं तो उन विषयों पर या विषय पर कानून निर्माण का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार संविधान का अनुच्छेद 252 यह स्पष्ट प्रावधान करता है कि भारतीय संघ के दो या दो से अधिक राज्य यदि इस बात का संकल्प पारित कर दें कि राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार भारत की संसद को है, तो यह अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है।

साथ ही एक अनुच्छेद का उल्लेख और करना नितांत आवश्यक है अनुच्छेद 253 यह भी केंद्र को राज्यों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण का अवसर प्रदान करती है। अनुच्छेद 253 के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संधि और समझौतों को लागू करना के उद्देश्य से संसद किसी भी विषय पर कानून बना सकती है क्योंकि

राष्ट्र संबंधों के संचालन का दायित्व संघ पर है। इसलिए 253 अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और कानूनों को लागू करने के संदर्भ में कोई भी कानून बना सकता है चाहे वह राज्य सूची के विषयों का अतिक्रमण ही क्यों न करता हो।

एक और महत्वपूर्ण अनुच्छेद का उल्लेख करना आवश्यक है अनुच्छेद 256 और 257 भारत सरकार को राज्य की सरकारों को निर्देश देने का अधिकार प्रदान करती है तथा भारत सरकार के कार्यकारी दायित्वों का पालन करने में राज्य के द्वारा कोई अड़चन ना उत्पन्न हो सके इसका प्रावधान करती है।

साथ ही ऐसा न करने पर अनुच्छेद 365 के तहत संघ सरकार के निर्देशों का अनुपालन नहीं करने के कारण, तो भारत के राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा कर दे। इस प्रकार से हम देखते हैं कि उक्त अनुच्छेद भारत सरकार को यह अवसर प्रदान करते हैं कि वह एक मजबूत केंद्र बन सके और विशेष स्थिति में राज्य सरकारों को प्राप्त राज्य सूची के विषयों को भी आच्छादित कर सके।

5. इकहरी नागरिकता

संघात्मक शासन व्यवस्था में जैसा कि अमेरिका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है। दोहरी नागरिकता नागरिकता का तात्पर्य एक नागरिकता वहां की जिस संबंधित राज्य में रह रहा है तथा एक नागरिकता अखिल भारतीय स्तर पर प्राप्त राष्ट्रीय सरकार की, लेकिन भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् प्रत्येक भारत का वासी, वह केवल भारत का नागरिक है न कि किसी राज्य का ही नागरिक है।

6. राज्यों को उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व नहीं

संघात्मक शासन में संघीय संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था रहती है उसके लिए जैसा कि अमेरिका में सीनेट राज्यों का ही सदन है। उसी प्रकार से हमारे देश भारत में भी राज्यों के सदन के रूप में राज्यसभा है। लेकिन संघ में सभी इकाइयों को समान दर्जा प्राप्त होता है। इसलिए अमेरिका में इसका अनुसरण करते हुए सीनेट में सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। जबकि हमारे देश भारत में राज्यसभा में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न देकर के यह प्रतिनिधित्व उन्हें जनसंख्या के आधार पर दिया गया है। इस प्रकार से आए ऐसे उपबंध भी कहीं न कहीं भारत की केंद्रीय सरकार या केंद्रीय संघीय शासन को मजबूती प्रदान करने का कार्य करते हैं।

5.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम एक बात स्पष्ट करना चाहेंगे वह यह कि भारतीय संविधान में संघात्मक शासन प्रणाली की बहुत सारी विशेषताएं पाई जाती हैं। भारतीय संविधान निर्माता भारत में पाई जाने वाली विविधता से परिचित है और उस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उस विविधता को अपने दायरे में रहते हुए, अपने लिए कार्य करने के अधिकार के तहत संघात्मक शासन की व्यवस्था प्रदान किए गए।

अर्थात् स्थानीय स्तर पर राज्य सरकार अपने स्तर पर संविधान की सीमा में, मर्यादा में रहते हुए अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए, अपने क्षेत्र के अपने जनमानस के विकास के लिए प्राथमिकताएं तय कर

सकें और कार्य कर सकें। इसलिए उनको अधिकार प्रदान किए गए लेकिन साथ ही साथ बहुत सारे ऐसी विशेषताएं हैं जो यह दर्शाती हैं कि भारत में एक मजबूत केंद्र की स्थापना की गई है तो यह स्पष्ट कर दें कि कुछ आलोचक कहते हैं कि संघात्मक शासन की व्यवस्था के अनुपालन में बहुत से प्रावधान तक किए गए हैं लेकिन भारतीय संविधान के द्वारा स्थापित जो संघात्मक शासन है, इसे पूरी तरह से संघ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें बहुत सारे एकात्मक विशेषताएं पाई जाती हैं। अगर इस बात का अध्ययन वैश्विक स्तर पर करें तो यह साथ दिखाई देता है कि यदि अमेरिका को ही देखें तो अमेरिका में भी संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया जहां पर केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया, राज्यों के लिए पृथक संविधान और उनकी अपनी न्यायपालिका और दोहरी नागरिकता तथा उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व आदि व्यवस्थाएं की गईं लेकिन उसके साथ-साथ एक मजबूत केंद्र की स्थापना की गई है।

इसीलिए वहां पर संघात्मक शासन के साथ अध्यक्षतात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई जहां राष्ट्र के अध्यक्ष राष्ट्रपति कार्यपालिका के प्रधान होते हैं। एक मजबूत केंद्र सरकार की स्थापना का प्रयास भी किया गया। इसी प्रकार से कनाडा में संघात्मक व्यवस्था की विशेषताओं का अनुसरण किया गया परंतु और अवशिष्ट शक्तियां वहां केंद्र को देते हुए एक मजबूत केंद्र की स्थापना का प्रयास किया गया। यह कहना कि भारत में ऐसा नहीं हो पाया यह कोई युक्तियुक्त तथ्य प्रतीत नहीं होता है।

वैसे भी संविधान निर्माताओं का उद्देश्य शासन के किसी ऐसे रूप को अपनाना नहीं था और उसकी शुद्धता को बनाए रखना नहीं था। वरन संविधान निर्माताओं का उद्देश्य यह कैसी शासन प्रणाली की स्थापना करना था जो देश की विविधता को स्वीकार करें देश में विविधता को स्थापित करें साथ ही इस विविधता को एक सूत्र में पिरोने का भी कार्य कर सकें, विविधता की स्थापना हो सके, उसे सम्मान मिल सके। विविधता राज्य के रूप में अपने अधिकारों और अपने अधिकारों का संविधान की मर्यादाओं में प्रयोग करते हुए, अपने लिए प्राथमिकताएं तय कर कार्य कर सकें। इसलिए राज्यों को अधिकार प्रदान किए गए, तथा विविधता विघटन के स्तर पर न जा सके इसलिए एक सूत्र में पिरोने के लिए अखिल भारतीय विशेषताओं का समावेश किया गया ताकि संकटकालीन स्थिति में एकजुट हो सकें। वर्तमान समय देश के अंदर भी बहुत सारे ऐसे कारण हैं जिनके निराकरण के लिए एक मजबूत केंद्र सरकार की आवश्यकता है तथा परराष्ट्र संबंधों के संचालन में अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी राष्ट्रों के बीच संबंधों के संचालन में भी एक मजबूत केंद्र सरकार की आवश्यकता है।

इसलिए अगर दुनियाँ के स्तर पर भी देखें तो पाते हैं कि जहां भी संघात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गई है वहां देश के अंदर के कार्य को और बाहर के कार्य को करने के लिए एक मजबूत केंद्र को बल मिला और प्रोत्साहन मिला। इस वजह से लगभग सभी संघात्मक शासन व्यवस्थाओं का अनुसरण करने वाले देशों में एक मजबूत केंद्र की सरकार व्यावहारिक रूप से कार्य कर रही है। इसका प्रावधान भारतीय संविधान निर्माताओं ने किया क्योंकि जब भारतीय संविधान का निर्माण किया गया उस समय भारत विभाजन एक दुखद घटना हुई। इसलिए भारतीय संविधान निर्माता एक ऐसी संविधान की रचना करना चाहते थे उसके आधार पर राजनीतिक व्यवस्था आगे बढ़ सके, जहां देश में विविधता को स्थान तो मिले, साथ ही एक मजबूत केंद्र सरकार की स्थापना हो सके जो राष्ट्र की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रख सकें।

इसीलिए डॉक्टर अंबेडकर ने विभाजन के संदर्भ में कहा था कि हम 1935 के अधिनियम से मजबूत केंद्र की स्थापना कर रहे हैं। संविधान के द्वारा यही कहना है कि भारतीय संविधान निर्माता जहां एक तरफ विविधता को सम्मान देना चाहते थे वही राष्ट्र की सुरक्षा और राष्ट्र की एकता और अखंडता से किसी प्रकार की समझौता करने को तैयार नहीं थे। इसीलिए उन्होंने एक मजबूत केंद्र की स्थापना की, जिससे राष्ट्र की एकता और अखंडता सुदृढ़ और सुरक्षित रह सकें।

इसके साथ-साथ बहुत से कारक हैं भारतीय संविधान में एकात्मक विशेषता को समाहित करते हैं जैसे अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्ग के कल्याण से संबंध में राष्ट्रपति अधिकार प्राप्त है। संपूर्ण भारत के लिए एक चुनाव आयोग अखिल भारतीय स्तर पर चुनाव के संचालन के लिए उत्तरदाई है। इसके साथ ही साथ वित्तीय प्रशासन के मामले में नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति और उनके कार्य दायित्व अधिकार और शक्तियां भी केंद्रीय मुखी है। भारत के राष्ट्रपति के द्वारा वित्त आयोग का गठन जिसकी अनुशंसा के आधार पर ही केंद्र और राज्य के बीच राजस्व का वितरण किन सिद्धांतों के आधार पर हो किया जाता है। क्षेत्रीय परिषद की स्थापना वर्तमान में नीति आयोग पूर्व में योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद आदि संस्थाएं निश्चित रूप से केंद्र को मजबूती प्रदान करती हैं। परंतु नाना प्रकार की एकात्मक विशेषताओं के बावजूद हमने देखा कि सामान्य स्थिति में भारतीय संविधान संघात्मक सिद्धांतों के अनुरूप ही संचालित होता है जैसा कि डॉक्टर अंबेडकर ने भी इस बात को स्पष्ट किया कि यह पूरी तरह से संघात्मक संविधान है संघात्मक शासन की स्थापना करता है। इस प्रकार से स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि भारत का संविधान न शुद्ध रूप से संघात्मक है और न ही शुद्ध रूप से एकात्मक है और इसे दोनों का समन्वित स्वरूप वाला ही कहा जा सकता है। जिसमें राष्ट्रीय हित सर्वोच्च है।

5.6 शब्दावली

संघात्मक शासन – ऐसी शासन व्यवस्था जिसमें शक्ति विभाजन केंद्र और राज्य के बीच हो
एकात्मक शासन – जहां सत्ता एक केंद्र में हो

संसदीय शासन – व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के घनिष्ठ सम्बन्ध पर आधारित शासन

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्र प्रताप सिंह

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संघ की प्रकृति पर निबंध लिखिए।
2. संविधान निर्माताओं के लिए शासन की शुद्धता बनाए रखना नहीं वरन राष्ट्र की सुरक्षा और अखण्डता का लक्ष्य प्राथमिक है। व्याख्या कीजिए।

इकाई 6 राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 राष्ट्रपति

6.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

6.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

6.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

6.4.2 विधायी शक्तियाँ

6.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

6.4.4 सैनिक शक्तियाँ

6.4.9 न्यायिक शक्तियाँ

6.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

6.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

6.6 उपराष्ट्रपति

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे । इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मंत्रिपरिषद को वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रूप में ,समझने में सहायता मिलेगी । साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलेगी ।

6.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे-

- 1.इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- 2.राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
- 3.आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं हैं।

6.3 राष्ट्रपति -

शासन के तीन अंग होते हैं। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान हैं (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

6.4 राष्ट्रपति का निर्वाचन -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है। गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
- 3- वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
- 4- वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,
- 5- राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति , राज्यपाल और मंत्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते , इसलिए उन्हें त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं होती ।

अनु. 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैं जिसमें --

1. संसद के दोनो सदनों (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1997 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है **अनु 99(3)**। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

दिये गये मतों की संख्या

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल निर्वाचित विधायकों की संख्या}} \div 1000$$

अगर शेष 500 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़ दिया जाएगा।

सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों के कुल निर्वाचित

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

अगर शेष 0.5 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़ दिया जाएगा।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात् आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी A, B, C, D, हैं मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होंने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे

कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न-१. राष्ट्रपति के चुनाव में कौन-कौन प्रतिभाग करता है?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनुच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि - संविधान के अनुच्छेद 96 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से, पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन के लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियाँ - राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

अनुच्छेद 99(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है। महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61 के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो, उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जाँच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

6.9 राष्ट्रपति की शक्तियाँ -

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं, जो निम्नलिखित हैं-

6.9.1 -कार्यपालिका शक्तियाँ -

संविधान के अनुच्छेद 93(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोड़ा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है। संसदीय परम्परा के अनुरूप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति,

प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमंत्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी तथा पूर्व प्रधानमंत्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य थे।

संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 79(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं। अनुच्छेद 79(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य, सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अनुच्छेद 79(9) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए बिना भी मन्त्री रह सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि, जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण, मंत्रिपरिषदको त्यागपत्र देना पड़े, ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्ध में संसदीय परम्परा के अनुरूप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति, मुख्य निर्वाचन आयोग और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषदकी सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात की जाती हैं। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

6.9.2.विधायी शक्तियाँ -

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों(लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रूप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 89 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होने पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर, एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करने के लिए, राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाही पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

- 1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)
- 2-अनुच्छेद 191 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन
- 3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - -वित्त आयोग की सिफारिशें

4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन

9-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन

6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेंगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक, जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता हैया दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायकों को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जाएं। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रूप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए बिना ही विधेयक को उसी रूप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।

2-निलम्बनकारी वीटो -

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

6.4.3 राजनयिक शक्तियाँ -

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

6.4.4 सैनिक शक्तियाँ -

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तियाँ अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं हैं क्योंकि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं। जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

6.4.9 न्यायिक शक्तियाँ-

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रूप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।

2- क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी शक्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त हैं। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में...जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3--उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को, यदि वह आवश्यक समझे तो ,अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त हैं-जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न -

-4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

-9 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

6.9.6 आपात कालीन शक्तियाँ-

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे । इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रूप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं । हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 392 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि .युद्ध, वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था । 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की ।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा । जनता पार्टी की सरकार बनी । इस सरकार में 1979 के 44वें संविधानिक संशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया । साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी ।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेषस्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी । इस आपात काल को संसद साधारण बहुमत से समाप्त कर सकती है।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती । 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया । संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किन्तु एक भाग में नहीं । परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है-

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 29 जून 1979 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी, इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढ़ा सकती है. किन्तु आपात की उद्घोषणाके समाप्त होने पर .यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती हैं।

2-अनुच्छेद 290 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती हैं। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती हैं किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती हैं।

3-हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुच्छेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणाके दौरान केन्द्र सरकार जहाँ आपातकाल लागू है, उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 394 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5 -मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है तो अनुच्छेद 398 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 399 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7- 1979 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता- संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो। अनुच्छेद 396(1) के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधारित हो सकता है। राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद .घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष (पंजाब में पांच वर्ष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं --

1-जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2-निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं हैं। राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव--

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 352 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंबित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर। अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना -

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर है। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं। परन्तु अनुच्छेद 356 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंबित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रूप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3-- वित्तीय आपात काल --

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव --

संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।

इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।

राज्य के समस्त वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।

संघीय सरकार ,राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

6.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति -

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषदके परामर्श के बिना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत हैं। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मंत्रिपरिषदके परामर्श के आधार पर कार्य करेगा। इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद से जो परामर्श प्राप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मंत्रिपरिषदको इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषदजो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरूप राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान हैं। भारतीय जब भी अनिश्चितता की स्थिति रहेगी, राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होगी।

6.6 उपराष्ट्रपति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 63 के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा।

योग्यता – उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
- 3-वह राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
- 4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो
- 9- ,उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हे त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैंजिसमें --

1. संसद के दोनो सदनों (लोकसभा, राज्यसभा) के सभी सदस्य।

जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

उपराष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के के अनुसार उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता हैया उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व राज्य सभा के द्वारा पारित संकल्प जो लोकसभा से समर्थित हो ,के आधार पर भी हटाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन का पात्र हैं। उपराष्ट्रपति के कार्य – उपराष्ट्रपति के कोई कार्य नहीं होते हैं। वह राज्य सभा के पड़ें सभापति होते हैं। किन्तु किन्हीं कारणों से राष्ट्रपति पद रिक्त (मृत्यु,त्यागपत्र,महाभियोग द्वारा पद से हटाये जाने पर) होने की दशा में वह राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करते हैं।

अभ्यास प्रश्न ---

8. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है- सत्य/असत्य
9. राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य
10. राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 61 के तहत लगाया जाता है- सत्य/असत्य
11. राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य
12. राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोषणा करते हैं - सत्य/असत्य

6.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है, क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है-व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियाँ प्राप्त हैं और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है। इस प्रकार जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते व्यापक रूप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है। साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है। विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

6.8 शब्दावली -

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते हैं परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:- जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 91 प्रतिशत)

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- 1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
- 2- 9 वर्ष, 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 9-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 392,
- 7-आन्तरिक अशान्ति, 8- असत्य, 9- असत्य, 10- सत्य, 11- असत्य,
- 12- असत्य

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची -

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर त्रिवेदी एवं राय -
भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली भारतीय प्रशासन -
अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

6.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari- 2004- Sterling Publishers Private Limited New Delhi

6.11 निबंधात्मक प्रश्न-

- 1-. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।
- 2-. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?
- 3-. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई 7 मंत्रिपरिषद, प्रधानमंत्री के पद एवं स्थिति की समीक्षा

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

7.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

7.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

7.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

7.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

7.4 सारांश

7.5 शब्दावली

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना: -

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में हैंक्यों कि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक हैं तो दूसरी तरफ उन्हें कुछ स्वविवेकि शक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेंगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते, इस कारण से सदन का नेता होने के कारण अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है। फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

7.2 उद्देश्य: -

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण हैं।
2. सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।
4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
5. मंत्रिपरिषद के विघटन की भी महत्व पूर्ण शक्ति होती है।

7.3 प्रधानमंत्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमंत्री का पद, शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग, प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए बिना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमंत्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरूप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता, किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमंत्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है-

- 1-प्रधानमंत्री की नियुक्ति
- 2-प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
- 3- प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
- 4- प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध

7.3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरूप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को, प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरू को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली और नेहरू जी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को, अस्थायी रूप से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा, क्योंकि कांग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरूप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस, लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोश था और उन्होंने इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का, जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी०वी० गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरूप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गांधी को एक शक्तिशाली नेता के रूप में, राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजवाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि हुई कि कांग्रेस के सर्वमान्य नेता के रूप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी को सफलता मिली। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ़ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए, चौधरी चरण सिंह को, तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ, सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरूप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए, चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रूप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिली और श्रीमती गाँधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रूप में स्थापित हुईं। किन्तु श्रीमती गाँधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या (31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गाँधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुईं। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गाँधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव, एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्यों कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी०पी० सिंह भाजपा

सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमंत्री पद प्राप्त किया। कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही, जून 1991 में पतन हो गया। 1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। मई 1991 राजीव गांधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलविहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दुकुमार गुजराल की कांग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेबाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैं क्योंकि क्षेत्रीय दल, सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते हैं। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती। 2014 और 2019 के आम चुनाव में भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को जीत मिली। प्रधानमंत्री के पद पर नरेन्द्र दामोदर दास मोदी की नियुक्ति राष्ट्रपति ने की।

7.3.2 प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इंग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे, जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु जब किसी राजनीतिक दल को बहुमत न प्राप्त हो तो सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री

का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की संख्या को महत्व देना पड़ता है।

अब तक प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त व्यक्तियों के नाम, उनके दल / गठबंधन और कार्यकाल निम्नलिखित हैं-

क्रम संख्या	नाम	दल/गठबंधन	कार्यकाल
1	जवाहर लाल नेहरू	कांग्रेस	15 अगस्त 1947- 27 मई 1964
2	गुलजारी लाल नन्दा	कांग्रेस	27 मई 1964- 9 जून 1964 (कार्यवाहक)
3	लालबहादुर शास्त्री	कांग्रेस	9 जून 1964 - 11 जनवरी 1966
4	गुलजारी लाल नन्दा	कांग्रेस	11 जनवरी 1966-24 जनवरी 1966 (कार्यवाहक)
5	इंदिरा गाँधी	कांग्रेस	24 जनवरी 1966 - 24 मार्च 1977
6	मोरारजी देसाई	जनता पार्टी	24 मार्च 1977 - 28 जुलाई 1979
7	चौधरी चरण सिंह	बीजेपी और कांग्रेस	28 जुलाई 1979 - 14 जनवरी 1980
8	इंदिरा गाँधी	कांग्रेस	14 जनवरी 1980 - 31 अक्टूबर 1984
9	राजीव गांधी	कांग्रेस	31 अक्टूबर 1984 - 1 दिसम्बर 1989
6	विश्वनाथ प्रताप सिंह	जनता दल और भाजपा	1 दिसम्बर 1989 - 6 नवम्बर 1990
11	चन्द्रशेखर		11 नवम्बर 1990 - 21 जून 1991
12	पीवी नरसिम्हा राव	कांग्रेस	21 जून 1991 - 16 मई 1996
13	अटलबिहारी वाजपेयी	एनडीए	16 मई 1996 - 1 जून 1996
14	एचडी देवगौड़ा		1 जून 1996 - 21 अप्रैल 1997
15	इन्द्र कुमार गुजराल		21 अप्रैल 1997 - 18 मार्च 1998
16	अटलबिहारी वाजपेयी	एनडीए	18 मार्च 1998 - 13 अक्टूबर 1999
17	अटलबिहारी वाजपेयी	एनडीए	13 अक्टूबर 1999 - 21 मई 2004
18	डॉ मनमोहन सिंह	यूपीए	22 मई 2004 से 26 मई 2014

19. श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी एन0डी0ए0 26 मई 2014 से अद्यतन

7.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय राजव्यवस्था में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी हैं। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं, जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती हैं। प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य हैं। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है-1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध - यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण, संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी, दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं, जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि, फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरू हुई और ऐसा लगने लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

7.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी हैं। भारत में प्रधानमंत्री की नियुक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता की, की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं है। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रूप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य थे, जब उनकी नियुक्ति प्रधानमंत्री पद पर थी।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है, इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है, क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण, लोकसभा में बहुमत प्राप्त

राजनीतिक दल ,मंत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता हैं। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री , राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता हैं। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता हैं। प्रथम लोकसभा के गठन से आज तक के कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये ।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर	राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन
1	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी		1970
2	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी		1977
3	चौधरी चरण सिंह		1979
4	राजीव गॉंधी		1984
5	चन्द्रशेखर सिंह		1991
6	अटल विहारी वाजपेयी		1998
7	अटल विहारी वाजपेयी		1999

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक हैकि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा हैतो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा हैपरन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं(जैसे 1977,1989,1991,1996,1998,1999,2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही ,वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं ।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है
2. निम्न सदन का नेता कौन होता हैं?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता हैं?
4. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थी
5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता हैं?

7.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है। यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है। समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है।

7.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल, राज्यमंत्री, उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते हैं।
3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते हैं।

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. श्रीमती इन्दिरा गांधी 5. छ: माह

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ. रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्रप्रतापसिंह

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान -	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन -	बी.एल. फड़िया

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?
2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।
3. गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 8 : संसद: संगठन एवं शक्तियां

इकाई की संरचना

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 भारतीय संसद
- 8.4 संसद का संगठन
- 8.5 राज्यसभा
- 8.6 लोकसभा
- 8.11 संसद की शक्तियाँ
- 8.8 सारांश
- 8.9 शब्दावली
- 8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इकाई में हमने यह अध्ययन किया है कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद करती है। उस मंत्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमंत्री होता है। प्रधानमंत्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के कारण से, सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से, शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंत्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई में हम संसद के संगठन, कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को, लोक सभा के समान शक्तियां न होते हुए भी वह महत्वपूर्ण है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1. संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे
2. राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
3. लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
4. अंततः कानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

8.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके हैं कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाई गई है। संघीय स्तर के विधान निर्मात्री संस्था को संसद कहते हैं। राज्य स्तर पर विधान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में संघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते हैं। वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यों आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

8.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून का रूप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निवारक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है। निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लंघन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 61 में किया गया है।

8.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उच्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलब्ध व्यक्तित्व होंगे। इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से $233+12 =$ (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। यहाँ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बड़े हो। अमेरिका में 50 राज्य हैं सभी राज्यों से उच्च सदन (सीनेट) में दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। इस प्रकार कुल 100 सदस्य होते हैं, जबकि हमारे यहाँ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित हैं-

1. वह भारत का नागरिक है।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो
3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,
4. वह पागल या दिवालिया न हो,
5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाएंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण हैं-

- 1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो, किसी भी प्रदेश में लड सकता है।
- 2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारी:- राज्यसभा के पदाधिकारी

सभापति

उपसभापति

उपराष्ट्रपति निर्वाचन

राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा, राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते हैं। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते हैं। अनुच्छेद - 89 और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रूप में कार्य करते हैं।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत। चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य हैं। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो, राज्यसभा के सभापति के कार्यों का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियाँ-

1. विधायी शक्तियाँ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते हैं। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रूप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियाँ हैं परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते हैं। वे तभी पारित माने जाएंगे जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल हैंक्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते है। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राज्यसभा में पेश किया जाता हैतो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रूप में पारित समझा जाएगा, जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते है, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते है। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट हैंकि कार्यपालिका शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा,लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियाँ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियाँ भी राज्य सभा की हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते है।
2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते है।
3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।
4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।
5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियाँ है, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित है-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 में उल्लिखित हैंकि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा की आवश्यकता का प्रस्ताव पारित कर दे तो नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट हैंकि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।
2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन हैंतो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

8.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ़ चुके हैं कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते हैं क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते हैं। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।
4. वह, पागल या दिवालिया न हो।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया। यद्यपि इसके पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता है। इस प्रकार 1970, 1977, 1979, 1990, 1997, 1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात् बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवाँ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 500 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से। जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते हैं। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है। परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य हैं जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें

संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याशी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात् विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रूप में नहीं वरन लोकसभा के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहाँ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियाँ –

हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रूप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरूप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके हैंकि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं। साथ ही वित्त विधेयक उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोक सकती है। इसके पश्चात् वह उसी रूप में पारित समझा जाएगा जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति- भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसको लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मंत्रिपरिषद पर प्रश्न पूछकर, पूरक पत्र, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते हैं और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करें।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियाँ समान हैं।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

8.11 संसद की शक्तियाँ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1- कानून निर्माण की शक्तियाँ- शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका , कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते हैं। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेद 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।

2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमंत्री उन्हीं में से अपने मंत्रिपरिषदका गठन करते है।

अनु0 115 (3) के अनुसार मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियाँ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति परविशेषप्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियाँ व्यापक है। परन्तु वे अमर्यादित नहीं हैं क्योंकि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रपति संसद का अंग हैं। सत्य असत्य /
2. संसद राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती हैं, सत्य असत्य /
3. राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन हैं। सत्य असत्य /
4. लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य असत्य /
5. राज्य सभा का कार्य कल 6 वर्ष हैं। सत्य असत्य /
6. राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती हैं। सत्य असत्य /
11. राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य हैं। सत्य असत्य /

8.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं, क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में समान दिखाई देती हैं परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम 6 माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल 14 दिन तक रोक सकती है, इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी। राज्य सभा की आपत्तियों का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती है। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो, उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। उस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

8.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियां निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है, वरन् मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 11. असत्य

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 9 : केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध

इकाई की संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
 - 9.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति
 - 9.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर
 - 9.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर
 - 9.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर
 - 9.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु
 - 9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 9.3.1. 6 कुछ विषयोंके प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक
- 9.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध
 - 9.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति
 - 9.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव
 - 9.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार
 - 9.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति
 - 9.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बरखास्तगी
 - 9.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना
 - 9.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध जांच आयोग
 - 9.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण
- 9.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध
 - 9.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण
 - 9.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित शुल्क
 - 9.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर
 - 9.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर
 - 9.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर
 - 9.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर
 - 9.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान
 - 9.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध
- 9.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण
- 9.7 वित्तीय संकटकाल
- 9.8 सारांश

- 9.9 शब्दावली
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.11 संदर्भ ग्रन्थ
- 9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत एक परिसंघ है और उसका संविधान परिसंघीय है। परिसंघ में शासन के दो स्तर होते हैं। सभी शक्तियाँ इन स्तरों में विभाजित की जाती हैं। संघ, 28 राज्य और 07 संघ राज्य क्षेत्र सभी संविधान से शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। राज्यों को शक्ति संघ नहीं प्रदान करता है। सबकी शक्ति का एक ही स्रोत है और वह है संविधान। संविधान में सभी शक्तियों का विभाजन संघ और राज्यों के मध्य किया गया है।

प्रत्येक परिसंघीय राज्य व्यवस्था का यह चिन्ह और आवश्यक लक्षण है कि शक्तियों का विभाजन और वितरण राष्ट्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया जाता है। जिन शक्तियों को इस प्रकार विभाजित किया जाता है वे साधारणतया चार प्रकार की होती हैं; क- विधायी, ख- कार्यपालिका, ग- वित्तीय, घ- न्यायिक। अतः संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध 2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध 3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे।
2. केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रशासनिक शक्तियों के विभाजन की विवेचना कर सकेंगे।
3. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4. केन्द्र राज्य सहयोग प्राप्त करने के विभिन्न उपायों की व्याख्या कर सकेंगे।

9.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध

हमारे संविधान के अनुच्छेद 245.255 में केन्द्र राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों के बारे में बताया गया है। संघ व राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

१. संघ सूची: इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयोंको रखा गया है। जिसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयोंपर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय है। जिनमें से कुछ प्रमुख है- रक्षा, वैदेशिक मामले, देशीकरण व नागरिकता, रेल, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खाने व खनिज आदि।

२. राज्य सूची: इस सूची में साधारणतया वो विषय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयोंपर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। इस सूची में 61 विषय है, जिनमें से कुछ प्रमुख है- पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, सिंचाई आदि।

३. समवर्ती सूची: इस सूची में सामान्यतया वो विषय रखे गये हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयोंपर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि समवर्ती सूची के विषय पर संघीय संसद तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो तो सामान्यतयः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 52 विषय है। जिनमें से कुछ प्रमुख ये है- फौजदारी, निवारक बिरोध, विवाह तथा विवाह विच्छेद दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, आर्थिक और समाजिक योजना और सामाजिक बीमा, पुर्नवास और पुरातत्व आदि।

अवशेष विषय: आट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में अवशेष विषयोंके सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाईयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की भांति अवशेष विषयोंके सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शक्तियों के बटवारे में केन्द्र सरकार की तरफ झुकाव अधिक है।

9.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

सामान्यतया संविधान द्वारा किये गये शक्ति विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा, नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघ सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा। लेकिन संसद के द्वारा कुछविशेषपरिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयोंपर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं।

9.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्य सभा द्वारा पुनः प्रस्ताव स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी।

9.3.1.2 संकट कालीन घोषणा होने पर

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है; अनुच्छेद 250 इस घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत चलते रहेंगे।

9.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाय, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाएगा। राज्यों के विधानमण्डल न तो इन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्ण रूप से समाप्त कर सकते हैं।

9.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

; अनुच्छेद 253, यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की संधि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

9.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया जाता है। इस स्थिति में राज्य की समस्त विधायी शक्तियां संसद द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार के अधीन इस्तेमाल की जाती हैं इस अधिकार के तहत संसद किसी भी सूची के किसी भी विषय पर विधायन बना सकता है।

9.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक

उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 ;ख के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं जिनके राज्य विधान मण्डल में प्रस्तावित किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या उससे बाहर, वाणिज्य या मेल जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

9.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र व राज्यों की कार्यपालिकाएँ अलग-अलग होती हैं। जहाँ तक विधान बनाने का प्रश्न हैदोनों के क्षेत्र को तय करना कठिन नहीं है क्योंकि सप्तम अनुसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। प्रशासनिक मामलों में बहुत सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं कुछ मामले ऐसे होते हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह निपटाया जा सकता है और कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके लिए बड़े संगठन की आवश्यकता होती है जिससे क्षमता और मितव्ययता संभव हो सके। इसके अतिरिक्त परिसंघ की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उनके झगड़े तय करना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 256 से 263 तक कुछ उपबन्ध किए हैं।

9.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता है। इस प्रावधान का यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक शक्ति को इस प्रकार प्रयोग में लाना होता है कि वह संघ सरकार की प्रशासनिक शक्ति को प्रतिबन्धित न करें। संघ सरकार आवश्यकतानुसार इस प्रकार के निर्देश भी राज्य सरकार को दे सकती है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार राज्यों को निम्नलिखित विषयों पर निर्देश दे सकती है-

1. राष्ट्रीय तथा सैनिक महत्व के यातायात तथा सूचना के साधनों का निर्माण और उनकी देखभाल करना।

2. राज्य में विद्यमान रेलमार्ग की सुरक्षा करना। तो भी जब कभी किसी यातायात के साधन के निर्माण अथवा देखभाल करने में अथवा रेलमार्ग की सुरक्षा करने में राज्य सरकार को अतिरिक्त व्यय करना पड़ जाता है तो भारत सरकार उसका भुगतान राज्य को कर देती है। और यदि अतिरिक्त व्यय की राशि के लिए कोई मतभेद हो जाता है तो भारत के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ इसका निर्णय करता है। ; अनुच्छेद 257।

3. परिगणित जनजातियों के हित के लिए बनाई योजनाओं को लागू करना ; अनु. 339।

9.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव

संघ सरकार को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत सामान्य तथा असामान्य अवस्थाओं में जो निर्देश देने की शक्ति दी गई है उसके परिणामस्वरूप यह भी बात सामने आती है कि यदि संविधान के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार नहीं करती तो राष्ट्रपति यह मान सकता है कि राज्य सरकार संविधान के अनु. 365 के अन्तर्गत प्रावधान के अनुसार कार्य करने के समर्थ नहीं है। जैसे ही यह घोषणा की जायेगी, राज्य सरकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत बरखास्त कर दी जायेगी। इस आधार पर राज्य की विधानसभा या तो निलम्बित की जा सकती है या भंग की जा सकती है।

9.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता यह है कि यह सहकारी संघ प्रणाली पर आधारित है। भारत सरकार के 1935 के विधान के समान यह संघ को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रतिबन्ध सहित अथवा प्रतिबन्ध

रहित कुछ कार्य राज्य सरकारों को सौंप दे अथवा राज्य सरकारों को स्वीकृति से इसके अधिकारियों को सौंप दे ;अनु. 258।

इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में तो राज्य सरकारों की अनुमति के बिना भी लोकसभा कानूनन अधिकार दे सकती है और राज्य के अधिकारियों को कार्य सौंप सकती है। जो भी ऐसे मामलों में यदि राज्य सरकार को कुछ अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है तो उसको भारत सरकार अदा करती है। यदि होने वाले अतिरिक्त व्यय के विषय में भारत सरकार और राज्य सरकारों में मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार जनगणना करवाना, चुनाव के लिए मत-सूची तैयार करवाना और चुनाव करवाना ये तीनों काम राज्य सरकारों को सौंपे हुए हैं।

9.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

मूलतः संविधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके अनुसार एक राज्य सरकार कुछ कार्य भारत सरकार के किसी अंग को सौंप सके। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि कभी ऐसी भी घटना हो सकती है। केन्द्र सरकार ने जब उड़ीसा सरकार की ओर से हीराकुण्ड बांध का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि इसकी लागत राज्य सरकार के खातों से खर्च होगी तो लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक ने आपत्ति की। उसके पश्चात् 1956-का सातवां संविधान संशोधन पारित किया गया और संविधान में अनुच्छेद 258 ए जोड़ दिया गया। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह सप्रतिबन्ध अथवा अप्रतिबन्ध रूप से कुछ कार्य सौंप दे जिससे राज्य की प्रशासनिक शक्ति संघीय सरकार के अधिकारियों के पास पहुँच जाये। परन्तु यह सब भी भारत सरकार की अनुमति से ही हो सकता है।

9.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बर्खास्तगी

राज्यपाल किसी भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण करता है। वस्तुतः वे शुद्ध रूप से संघीय सरकार की दयाभाव पर निर्भर हैं। इसलिए अनेक बार उन्हें केन्द्रीय सरकार के दबाव के कारण मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करने तथा पदच्युत करने और विधानसभा की बैठक बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का कर्तव्य निबाहना पड़ता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को निश्चित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करने के अधिकारों का प्रयोग केन्द्र में सत्ता दल के हितों को ध्यान में रखते हुए करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत हद तक केन्द्र राज्यों की स्वायत्ता को राज्यपालों के द्वारा नष्ट कर देता है।

9.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। यद्यपि इसमें यह अवश्य है कि यदि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी बन गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान में यि गये प्रावधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है। इस अनुच्छेद का केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी ने पुनः-पुनः प्रयोग पक्षातपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया और दूसरी और राज्यों की स्वायत्ता को नष्ट करने के लिए किया। जो भी राज्य सरकार अपने अनूकूल न दिखाई दी उसे ही पदच्युत कर दिया गया तथा विधानसभाओं को या तो निलम्बित कर दिया गया अथवा केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के हितों को ध्यान में रखते हुए उसे

भंग कर दिया गया। उस अनुच्छेद ने वस्तुतः राज्य सरकारों को प्रशासन की दृष्टि से सर्वथा केन्द्र के अधीन बना दिया।

9.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरूद्ध जाँच आयोग

एक दूसरा उपाय जिसके द्वारा संघ सरकार राज्य सरकारों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है, वह हैकेन्द्र सरकार द्वारा मुख्यमंत्रियों के भूल-चूक या अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उनके विरूद्ध जाँच-आयोग बैठाना। इस प्रकार का जाँच आयोग सबसे पहले पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों के विरूद्ध संघ सरकार ने 1963 में दास आयोग के नाम से बैठाया था। इसके उपरान्त इस प्रकार के जाँच आयोग बैठाए गए जैसे 1972 में पंजाब में सरकार प्रकाश सिंह बादल के विरूद्ध, 1976 में तमिलनाडु में करूणानिधि के विरूद्ध सरकारिया आयोग, आन्ध्र में वेंगल राव के विरूद्ध विद्या दलाल आयोग, कर्नाटक में देवराज उर्स के और हरियाण में बंसी लाल के विरूद्ध 1978 में, और त्रिपुरा के मुख्यमन्त्री एस. एस. सेन गुप्त के विरूद्ध 1979 में बर्मन आयोग। 1981 में संघ सरकार ने तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट घोटाले के विषय में जांच करने लिए आयोग की नियुक्ति की थी।

9.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

संविधान में राज्यों की सेवाओं और केन्द्र सेवाओं का प्रावधान है। तो भी कुछ सेवाएँ ऐसी हैं जो अखिल भारतीय हैं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा ;(इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस), और भारतीय पुलिस सेवा ;(इण्डियन पुलिस सर्विस), केन्द्र सरकार इसके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती हैयदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस प्रकार की अखिल सेवा के बनाने की सिफारिश करें। केन्द्र की अनुमति के बिना उन पर कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

9.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध

कोई भी सरकार बगैर धन के सुचारू रूप से नहीं चल सकती हैएक परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों की स्वतंत्रता आवश्यक होती है। यह स्वतंत्रता तभी रह सकती हैजब राज्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था हो। प्रायः सभी मुख्य परिसंघों में वित्तीय व्यवस्था की राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263.293 तक वित्तीय सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था हैकि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। अनुच्छेद 265 के उपबन्ध प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के करों पर लागू होते हैं। अनुच्छेद 266 के अनुसार भारत सरकार प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया गया धन तथा उद्योग के प्रतिदान में प्राप्त सभी धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी और इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया धन तथा उधार के प्रतिदान में प्राप्त धनों की एक संचित निधि बनेगी जो राज्य की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी। भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन लोक लेखे ; में जमा किया जाएगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 267 में भारत व राज्यों के लिये आकस्मिकता निधि की व्यवस्था हैजो अपूर्व दृष्ट ; व्यय के लिए क्रमशः राष्ट्रपति व राज्यपालों के हाथ में रखी जाएगी।

9.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण

भारतीय संघ में, संघ और राज्यों के बीच राजस्व वितरण की निम्नलिखित पद्धति अपनाई गई है।

9.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित शुल्क

अनुच्छेद 268 में यह उपलब्ध है कि ऐसे मुद्रा शुल्क औशधीय और प्रसाधनीय पर ऐसे उत्पादन शुल्क जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किये जायेंगे परन्तु संघ राज्य क्षेत्र के भीतर उदग्रहीत किए जाने वाले शुल्क भारत सरकार द्वारा और राज्यों के बीच उदग्रहीत शुल्क राज्यों सरकारों द्वारा संग्रहीत किये जाएंगे। जो शुल्क राज्यों के भीतर उदग्रहीत किए जाएंगे वे भारत की संचित निधि में जमा न होकर उस राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएंगे।

9.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल समुद्र तथा वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान प्रदान पर मुद्राक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य से माल के क्रय विक्रय पर कर।

9.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

कुछ कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं किन्तु उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आयकर का विभाजन संघीय भू भागों के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आयकर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी जीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

9.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर

अनुच्छेद 271 में यह उपबन्ध है कि संसद 269 और 270 में निर्दिष्ट शुल्कों या करों की अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है। अधिभार से हुई सारी आय भारत की संचित निधि का भाग होगी। संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि।

9.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। इससे प्राप्त आय राज्य या उसकी नगर पालिकाओं, जिला वार्डों या स्थानीय बोर्डों के हितों में प्रयोग की जाएगी। राज्यों के मुख्य राजस्व स्रोत हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर वाहनों पर चुंगी कर आदि।

9.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान

अनुच्छेद 273 के तहत पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान पैदा करने वाले राज्यों- बंगाल, उड़ीसा, बिहार व असम को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

9.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध-संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संपत्ति निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को भी प्राप्त है परन्तु वे विदेशी से उधान नहीं ले सकते। यदि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कहीं से कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है।

9.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा नियंत्रण

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने का ढंग एवं उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संसद राज्यों की आय पर अपना नियंत्रण रखती है।

9.7 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकाल की स्थिति में राज्यों का आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। सत्य असत्य/
2. अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। सत्य असत्य/
3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। सत्य असत्य/
4. संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। सत्य असत्य/

9.8 सारांश

जिस प्रकार से एक गाड़ी को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों, के मध्य समन्वय का होना आवश्यक है उसी प्रकार से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर समन्वय ही देश को विकास के क्षेत्र में ऊर्चाओं पर ले जा सकता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात आरम्भिक वर्षों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की भावना थी किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनों के मध्य सम्बन्धों में दरारें दिखनी लगीं। इसका एक कारण तो यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी में अपने देश की सरकार के प्रति चरम सीमा पर उत्साह था तथा दूसरा कारण यह था कि ज्यादातर राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य बड़े भाई तथा छोटे भाई जैसा रिश्ता था अतः तनाव न के बराबर था। तनाव उत्पन्न होने का मुख्य कारण राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय होना था। धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य तनाव बढ़ाने के मुख्य कारणों में राज्यपाल की भूमिका भी मुख्य रही है। क्योंकि राज्यपाल सरकारों में संविधानिक प्रमुख होने के स्थान पर केन्द्रीय एजेंट के रूप में ज्यादा कार्य करने लगे हैं। तनाव का एक और मुख्य कारण अखिल भारतीय सेवाएँ हैं जिसके कि सदस्यों को नियन्त्रित करने वाली केन्द्र सरकार होती है जबकि वो कार्य राज्य सरकारों में करते हैं और बगैर केन्द्र की अनुमति के उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही नहीं कर सकती है। तनाव का एक अन्य कारण वित्त भी है। कुछ सरकारें केन्द्र से मिले धन को राज्य के विकास में न लगाकर अपने राजनीतिक जनाधार को बढ़ाने में लगी रहती है। जिसे कि केन्द्र द्वारा अक्सर ही विरोध प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र राज्यों के मध्य सम्बन्ध केन्द्र में प्रधानमंत्री की स्थिति के ऊपर भी निर्भर करता है। 1990 के पश्चात केन्द्र में ज्यादातर सरकारें कमजोर रही हैं उसका सबसे बड़ा कारण साक्षात्कार का होना रहा है। केन्द्र में सरकार राज्यों के क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनायी जा रही है। जिसकी कि वहज से समर्थन देने वाली पार्टी के राज्यों में केन्द्र सरकार ब्लेक मेल होती रहती है। इसके उदाहरण हमको दिन प्रतिदिन देखने को मिलते रहते हैं। यदि हमको वास्तव में अपने देश को तरक्की की राह पर ले जाना है तो केन्द्र सरकारों का राज्यों सरकारों के मध्य विवाद रहित तथा स्वार्थ रहित सम्बन्ध होने चाहिये।

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रशासनिक, विधायी तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है और यह विभाजन संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को बताया गया है। स्पष्ट विभाजन के बावजूद भी विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कठिनाइयाँ आती हैं। यह कठिनाइयाँ वहाँ अवश्य उत्पन्न होती हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्यों में अलग-अलग पार्टी की सरकारें होती हैं। देश की तरक्की के लिए केन्द्र तथा राज्यों के मध्य मधुर सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवश्यक है।

9.9 शब्दावली

अनुच्छेद 352	:	राष्ट्रीय आपात काल
अनुच्छेद 356	:	राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता
अनुच्छेद 360	:	वित्तीय आपात काल

अखिल भारतीय सेवाएँ : भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत का संविधान: ब्रज किशोर शर्मा , 2008, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फाडिया, 2002, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. भारतीय प्रशासन : प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008, ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
4. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन डा. बी. एल. फाडिया, डा. कुलदीप फाडिया 2007, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
2. इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001, विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।
2. भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001, यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
2. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
3. केन्द्र तथा राज्यों में मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
4. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवाद के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई-10 राज्यपाल, मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.2 राज्यपाल
 - 10.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल
 - 10.2.2 राज्यपाल की शक्तियां और कार्य
 - 10.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
 - 10.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
 - 10.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
- 10.3 मंत्रिपरिषद और मुख्यमंत्री
 - 10.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
 - 10.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य
 - 10.3.3 मंत्रिपरिषद और व्यवस्थापिका
 - 10.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
- 10.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
- 10.5 सारांश
- 10.6 शब्दावली
- 10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारत में सभी राज्यों में शासन की वही पद्धति है जो केन्द्रीय स्तर पर मान्य है। दूसरे शब्दों में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मंत्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मंत्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित हैं। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1. राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
2. राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों की जानकारी ले सकेंगे।
3. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
4. राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों को समझ सकेंगे।
5. राज्य की राजनीति में राज्यपाल की भूमिका को समझ सकेंगे।
6. तुलनात्मक दृष्टि से राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्तियों की जानकारी लेंगे।
7. मुख्यमंत्री और विधानसभा के रिश्तों की जानकारी लेंगे।

10.2 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते हैं। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् इत्यादि होते हैं।

10.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है। वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। लेकिन पद के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते हैं।

एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

10.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ हैं जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की हैं। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है:-

कार्यकारिणी शक्तियाँ

1. राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मंत्रिपरिषदके अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।
2. महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3. राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।
4. यद्यपि राज्यपाल को उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।

14. यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत निर्वाचित नहीं हो सकता तो विधान सभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।

6. यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्य पाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो ।

विधायनी शक्तियाँ--राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधान सभा को भी भंग कर सकता है।

राज्यपाल को विधान सभा और विधान परिषद के सत्रों को अलहदा अथवा संयुक्तरूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है।

राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-

1. विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
2. या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
3. या वित्त विधेयक को छोड़कर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुनर्विचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं ।
4. वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है, और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस संदर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नहीं है। वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलो पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

1. ऐसा विषय जिस से सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या
2. राज्यपाल ऐसे विषय से संबन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।

राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात् मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है।

राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा या फता को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नहीं है।

आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के **अनुच्छेद 356** के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बहुत विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अक्सर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ-न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करें कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मंत्रिपरिषदसे परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। संभव है उसका ऐसा कदम मंत्रिपरिषदकी इच्छा के विरुद्ध हो। उदाहरण के लिए -

1. जब राज्यपाल **अनुच्छेद 356** के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे
2. राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।

3.राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी है। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते हैं।

10.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध -

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। यदि मन्त्रि परिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषदको बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषदको बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पत रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधान सभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधान सभा में शासक दल में टूट फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो। तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है। क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलों की सरकारें हो, तब वह केन्द्र के हितों को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नहीं होता। ऐसी स्थिति में पीडित दल न्यायालय की शरण लेता है। राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कड़ी आलोचना हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच टकराव बढ़ता है और संघात्मक संरचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

10.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक जो केन्द्र में भी है और राज्यों में भी। केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान (हेड) है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषदकरती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषदअपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विशम स्थिति है क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित

होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है। सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञों ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद 356 का अक्सर दुरुपयोग करके राज्यपाल ने स्वयं को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम एक कुशल राजनीति अधिक सिद्ध किया है। इससे राज्य में अस्थिरता, दल- बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिये 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गईं जबकि 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गईं। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया। 1980 में कांग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया, और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया।

10.2.14 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ उस से राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, और इसलिये वह मंत्रिपरिषदकी सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता। राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान हैं। राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा, अपनी पूरी योग्यता से संविधान और कानून की रक्षा करेगा, और राज्य के लोगों की सेवा में स्वयं को समर्पित करेगा। इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से संबन्धित उसकी सोच और मंत्रिपरिषदकी सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है।

उधर अनुच्छेद 163(1) स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मंत्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पादन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा।

अनुच्छेद 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराएँ नहीं हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असंभव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वयं ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करते हैं जहाँ राज्यपाल को बड़े कदम उठाने पड़ते हैं।

10.3 मंत्रिपरिषद और मुख्यमंत्री

प्रत्येक राज्य में एक मंत्रिपरिषद होती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मंत्रिपरिषदका कार्य राज्यपाल को उसके कार्यों के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मंत्रिपरिषदके क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधान सभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

10.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मंत्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मंत्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमंत्री स्वयं अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के संदर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्य मंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैं:

(अ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से संबन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।

(आ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे मुहैया कराये तथा

(इ) राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिससे मंत्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।

मुख्यमंत्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधान सभा को भंग करने की सिफारिश, राज्यपाल से कर सकता है।

10.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य

शक्तियों और कार्यों की दृष्टि से मुख्यमंत्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्य मंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्य मंत्री की सारी शक्तियाँ और कार्य मंत्री परिषद में निहित हैं जिसका व्यक्तित्व सामूहिक है।

मंत्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढ़ाती है और कानून पास हो जाते हैं तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित हैं यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहिचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका के सम्बोधित करता है तथा संदेश भेजता है परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधान सभा को बर्खास्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मंत्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

10.3.3 मंत्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिपरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते हैं और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक मंत्री विधान सभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरुद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधान सभा के सदस्य सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते हैं। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधान सभा में पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मंत्रिपरिषदका अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मंत्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते हैं। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते हैं और क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 142वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मंत्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मंत्रिपरिषदके हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधान सभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरुद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रि मण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

10.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमंत्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते हैं। ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

10.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कड़वाहट रहती है। इस कड़वाहट का कारण है दलीय द्वन्द्व। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है। जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती हैं, तब राज्यपाल और मुख्यमंत्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेषरूप से जहाँ राज्य में मिली जुली सरकारें हैं वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उड़ीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 06 दिसम्बर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर कानूनी थी क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में ग्रेस सरकार का फैसला था औचित्यपूर्ण था क्योंकि बर्खास्तगी का आधार “पंथ निरपेक्षता” था। जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि तीनों राज्यों की बी0जे0पी0 सरकारें अपना पंथ निरपेक्ष आचार खो चुकी थी। इसलिए उनका बना रहना संविधान की आत्मा के विपरीत था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमंत्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमंत्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत्त होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसंबर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमंत्री बनाये गये, चुनाव लडा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका

नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है।

अभ्यास प्रश्न:

1. राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है?
2. राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?
3. राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?
4. भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?
14. राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है?
6. राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?
7. दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?
8. अयोध्या का विवादित ढांचा 1992 में किस तिथि को गिराया गया ?

10.14 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी, राज्य में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है-राज्यपाल जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमंत्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमंत्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं वह संवैधानिक हैं लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मंत्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है। मंत्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है। राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-356 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। राज्यपाल बड़ी गरिमा का पद है। राज्य में मुख्यमंत्री के मंत्रिपरिषद में प्रमुख स्थिति होने के नाते कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन् राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

10.6 शब्दावली

कन्वेंशन	परम्परा
रेमीशन	सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना
रेपरीव	सजा माफ करना या टालना
डिसक्रीशन	छूट की स्वतंत्रता

रेस्पाइट

सजा में राहत देना

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. राष्ट्रपति २. ३५ वर्ष ३. अनुच्छेद ३५६ ४. संघात्मक ५. मुख्यमंत्री ६. राज्यपाल ७. ५२वे संवैधानिक संशोधन ८. ६ दिसम्बर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

दुबे, एस0एन0	भारतीय संविधान और राजनीति
माहेश्वरी, श्रीराम	स्टेट गवर्नमेंट्स इन इण्डिया
पाण्डे, लल्लन बिहारी	दि स्टेट एक्जीक्यूटिव
पायली, एम0वी0	इण्डियाज़ कान्सटीट्यूशन

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्रप्रतापसिंह
भारतीय संविधान -	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन -	बी.एल. फड़िया

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन हैं और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई - 11 राज्य विधान मंडल

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

1.3 राज्य विधान मंडल

11.3.1 राज्य विधान परिषद

11.3.2 राज्य विधान सभा

11.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

11.3.4.1 विधायी शक्तियाँ

11.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

11.3.4.3 वित्तीय शक्तियाँ

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 14 में हमने राज्यपाल के बारे में अध्ययन किया है। जिसमें यह देखा है कि राज्य में राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं वह संवैधानिक हैं लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मंत्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी हैं और विवादास्पद भी। सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। राज्यपाल का पद बड़ी गरिमा का पद है। राज्य में मुख्यमंत्री के कार्य वही हैं जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

अब हम इस इकाई में राज्य विधान मंडल के बारे में अध्ययन करेंगे जिसमें यह देखेंगे कि राज्यों में भी संघ का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। इस लिए राज्य में विधान मंडल की वही भूमिका है जो संघ में संसद की है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम

1. यह जानेगे कि राज्य विधान मंडल की संरचना किस प्रकार की है।
2. यह समझ सकेंगे कि विधान सभा के संरचना किस प्रकार से होती है।
3. यह अध्ययन करेंगे कि विधान सभा की संरचना किस प्रकार की होती है।
4. अंततः हम विधान मंडल की शक्तियों का अध्ययन कर सकेंगे।

11.3 राज्य विधान मंडल

भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यह न केवल संघ के स्तर पर वरन राज्य के स्तर पर अपनाया गया है। राज्य विधानमण्डल में दो सदन होते हैं। विधान परिषद- जो कि उच्च सदन है, जो परोक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने के साथ मनोनीत किये जाते हैं, जबकि विधानसभा, जिसे निम्न सदन भी कहते हैं। इसे जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार एवं जम्मू-कश्मीर पाँच राज्यों में विधान परिषदें सृजित हैं।

11.3.1 राज्य विधान परिषद

विधान परिषद की संरचना-संविधान के अनुच्छेद 171 के अनुसार राज्य विधान परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। लेकिन किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। विधानपरिषद के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचन मंडल द्वारा किया जाता है। इसका गठन इस प्रकार से होता है-

1- समस्त सदस्यों का एक तिहाई भाग नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और स्थानीय प्राधिकारियों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचन मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

2- समस्त सदस्यों के बारें भाग के बराबर (1/12) का निर्वाचन तीन वर्ष के स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण सदस्यों के द्वारा।

3- सदस्य न्यूनतम तीन वर्ष से शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों के द्वारा जो (1/12) माध्यमिक पाठशाला की शिक्षण संस्थाएं न हो।

4- एक तिहाई सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा।

5- अनन्ततः समस्त सदस्यों के छठे भाग के बराबर राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जाता है जो साहित्यिक, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्याति उपलब्ध व्यावहारिक अनुभवी हो।

एम.वी.पायली के अनुसार कहा जा सकता है कि राज्य विधानसभा की रचना लोकसभा के ढाँचे पर है तथा विधान परिषद की राज्यसभा से समानता है।

विधान परिषद की अवधि:- संसदीय परम्परा के अनुरूप और राज्य सभा के समान विधान परिषद का भी विघटन नहीं होता है। इनके तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पर सेवानिवृत्त होते हैं।

इसलिए सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। परन्तु यदि मृत्यु, त्याग-पत्र आदि कारणों से आकास्मिक रिक्ति की दशा में उस पद हेतु जो सदस्य निर्वाचित होगा वह शेष अवधि के लिए होगा न कि 6 वर्ष के लिए।

सदस्यता के लिए अर्हता:- विधानमण्डल के दोनों में से किसी भी सदन के सदस्य होने के लिए निम्न अर्हताएं होना आवश्यक है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो।
- 2- विधानपरिषद के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष और विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए।
- 3- उसके पास वे अर्हताएं भी हो जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करे। अनुच्छेद 171।

निरर्हता:- इसके संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 191 में किया गया है-

- 1- केन्द्र या राज्य के अधीन लाभ का पद धारण करने की स्थिति में।
- 2- यदि वह पागल हो।
- 3- यदि वह दिवालिया हो।
- 4- जब उसने विदेशी राज्य की नागरिकता ले ली है। अनुच्छेद 190 में प्रावधान है कि कोई सदस्य एक साथ मंत्रीमंडल के दोना सदस्य नहीं हो सकता।

अनुच्छेद 190 (2) यदि कोई सदस्य दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डल सदस्य हो जाता है तो उसे 10 दिन के भीतर एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमण्डल से त्याग-पत्र देना होगा।

अन्यथा वह कहीं का सदस्य नहीं रहेगा। 190 (4) में यह प्रावधान है कि बिना सदन की अनुमति के यदि कोई सदस्य 60 दिन तक सदन से अनुपस्थित रहता है तो सदन के स्थान को रिक्त घोषित कर देगा।

एक महत्वपूर्ण तथ्य और स्पष्ट करना आवश्यक है कि यदि किसी सदन के सदस्य के निरर्हता का प्रश्न उठता है तो इस संबंध में राज्यपाल निर्वाचन आयोग की राय के अनुसार कार्य करना होगा। अनुच्छेद 192 (2)

विधानपरिषद के पदाधिकारी:- विधानपरिषद अपने सदस्यों में से सदन के कार्य के सुचारू संचालन हेतु सभापति और उपसभापति का चुनाव करते हैं। जो सदन का सदस्य बने रहने तक अपने पद पर बने रहते हैं। इसके पूर्व दोनों एक दूसरे को त्याग-पत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं तथा सदन यदि 14 दिन की पूर्व सूचना देकर बहुमत के समर्थन से पद से हटा सकती है।

गणपूर्ति:- यह प्रावधान है कि दो बैठकों के बीच छः माह से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। सदन की कार्यवाही तभी प्रारम्भ हो सकती है जब सदन के सदस्यों का 10 प्रतिशत अवश्य उपस्थित हो तथा यह संख्या 10 से कम न हो।

11.3.2 राज्य विधान सभा

जैसा कि हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि यह जनप्रतिनिधि सदन है। क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है। विधान सभा के सदस्यों की संख्या 500 से अधिक नहीं हो सकती और 60 से कम नहीं हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 333 में यह प्रावधान किया गया है कि यदि राज्यपाल की राय में आंगतक भारतीय समुदाय को विधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो उस समुदाय से एक व्यक्ति को वह मनोनीत कर सकता है।

विधान सभा के सदस्यों की अर्हता:-

अनुच्छेद 173 के अनुसार-

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
3. वह भारत सरकार या किसी राज्य के अधीन लाभ के पद पर न हो,
4. संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन विधि निर्धारित शर्तों को पूर्ण करता हो,
5. वह अन्य निर्धारित शर्तें पूर्ण करता हो, अर्थात् वह दिवालिया, पागल न हो एवं उसने अन्य विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा व्यक्त न की हो

विधान सभा की अवधि:- इसकी अवधि 5 वर्ष होती है। 24 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 1976 में यह अवधि 6 वर्ष कर दिया गया जिसे 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा पुनः 5 वर्ष कर दिया राज्यपाल विधानसभा को 5 वर्ष से पूर्व भी भंग कर सकता है। आपातकाल में संसद विधि द्वारा एक वर्ष का कार्यकाल बढ़ा सकती है। परन्तु, आपातकाल समाप्त होने की दशा में यह वृद्धि 6 माह से अधिक समय तक लागू नहीं कि जा सकती।

गणपूर्ति, अधिवेशन:- विधान सभा की कार्यवाही तभी प्रारम्भ की जा सकती है जब समस्त संख्या की न्यूनतम 10 प्रतिशत उपस्थित हो राज्यपाल विधानसभा के अधिवेशन बुलाता है। किन्तु दो अधिवेशनों के बीच का अन्तर 6 माह से अधिक नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 176 यह उपबन्ध करता है कि प्रत्येक आम चुनाव के उपरांत, राज्यपाल, प्रथम सत्र को संबोधित करेगा।

विधानसभा के पदाधिकारी- राज्य विधानसभा में दो पदाधिकारी होते हैं- अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष। इन दोनों पदाधिकारियों का निर्वाचन विधानसभा सदस्यों द्वारा सदन की प्रथम बैठक में किया जाता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कर्तव्यों का निर्वहन करता है। यदि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो तो विधानसभा दूसरे अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। विधानसभा के बहुमत द्वारा अध्यक्ष को भी पदच्युत किया जा सकता है।

11.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

संसदीय परम्परा के अनुरूप भारत में राज्यों में कानून निर्माण का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को होता है। इन्हें सातवीं अनुसूची के राज्यसूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के कार्य और शक्तियों का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं में कर सकते हैं-

11.3.4.1 विधायी शक्तियाँ

राज्य विधान मण्डल को राज्य सूची के अतिरिक्त समवर्ती सूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है। परन्तु संसद को भी समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार है। जिसमें यह प्रावधान है कि यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर संसद और विधानमण्डल कानून बनाते हैं तो और उनमें विवाद उत्पन्न हो तो संसद द्वारा निर्मित कानून प्रभावी होगा। कोई भी विधेयक जहाँ दो सदन हैं वहाँ पर दोनों द्वारा पारित होकर और जहाँ केवल विधानसभा है उसके द्वारा पारित होकर, राज्यपाल की स्वीकृति मिलने पर ही कानून बनता है।

सधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई समान अधिकार नहीं है। यदि कोई विधेयक विधानपरिषद में पेश किया जाता है और विधानसभा उस विधेयक को अस्वीकार कर दे तो वह समाप्त हो जाता है।

विधानसभा में पारित करने के पश्चात जब विधेयक विधानपरिषद में भेजा जाता है तो उसे तीन माह के भीतर वापस किया जाना आवश्यक है।

दोनों सदनों में किसी विधेयक पर असहमति होने की दशा में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं किया गया है। फलस्वरूप विधानसभा द्वारा विधेयक पर किया गया निर्णय अन्तिम होता है।

11.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

- 1- मंत्रियों से नीति के विषयों पर प्रश्न पूछने का।
- 2- बजट पर विमर्श की शक्ति।
- 3- मंत्रीपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव।

11.3.4.3 वित्तीय शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

राज्य के बजट को विधानमण्डल की स्वीकृति अनिवार्य है। विधानसभा का राज्य के धन पर पूर्ण नियन्त्रण है। राज्य के बजट को विधानमण्डल द्वारा ही स्वीकृति प्रदान की जाती है। वित्तीय मामलों में विधानसभा की शक्तियाँ विधान परिषद से अधिक हैं। संविधान के अनुसार धन विधेयक केवल विधानसभा में पेश किया जाता है। इसके द्वारा पारित होने पर विधान परिषद को भेजा जाता है। विधानसभा के किसी भी संशोधन को मानने के लिए विधानसभा बाध्य नहीं है। कोई विधेयक धन विधेयक नहीं है इसका निर्धारण विधानसभा अध्यक्ष के द्वारा किया जाता है। धन विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकते हैं। साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। विधान परिषद के सुझावों को मानना विधानसभा में ही अनुदानों की मांगों पर मतदान बजट में निहित राशियों में कटौती, अरोपित करों में छूट दी जा सकती है। वित्त पर

नियन्त्रण सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के माध्यम से किया जाता है। वित्तीय आपातकाल में संसद राज्य विधानसभा को वित्त सम्बन्धी निर्देश दे सकती है तथा राज्य के वित्त विधेयक को अपने समक्ष प्रस्तुत करके उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य विधान परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। सत्य / असत्य
2. राज्य विधान परिषद लिए किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी | सत्य / असत्य
3. विधान परिषद के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष होनी चाहिए | सत्य / असत्य
4. विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए | सत्य / असत्य
5. साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिषद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। सत्य / असत्य

11.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं कि हमारे संविधान के द्वारा संघ के समान राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। जहाँ पर दो सदन हैं वहाँ विधान परिषद, विधान सभा और राज्यपाल को मिलाकर विधानमंडल कहलाता है जिन राज्यों में विधान परिषद नहीं है वहाँ पर राज्यपाल और विधान सभा मिलकर विधान मंडल कहलाते हैं।

हमारे विधान मंडल में विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। जब कि विधान परिषद के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। यह एक स्थाई सदन है जिसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के अंतराल पर सेवा निवृत्त होते हैं। यद्यपि सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष होता है जबकि विधान सभा के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है। यह कार्यकाल विधान सभा का भी है परन्तु इसके पूर्व भी कुछ दशों में इसका विघटन किया जा सकता है। हमने यह भी अध्ययन किया है इस इकाई में कि राज्य में मुख्य कानून निर्मात्री संस्था राज्य विधान मंडल ही है।

11.5 शब्दावली

जनप्रतिनिधि सदन - विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

संसद – राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा को मिलाकर बनती है।

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति
2. आर.एन. त्रिवेदी एवं एम.पी.राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
3. महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति

11.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ब्रज किशोर शर्मा - भारतीय संविधान
2. दुर्गादास बसु - भारतीय संविधान

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य विधान मंडल पर एक निबंध लिखिए।
2. राज्य विधान मंडल की शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई -12 : सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, संगठन ,कार्य एवं शक्तियां

इकाई की संरचना

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 न्यायपालिका
- 12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन
 - 12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति
 - 12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध
 - 12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय
 - 12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार:
- 12.5 उच्च न्यायालय
 - 12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार
- 12.6 सारांश
- 12.7 शब्दावली
- 12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारत में किस प्रकार से एकीकृत न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है उसके बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे | इसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्य क्या हैं, उसकी अधिकारिता क्या है? उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है और किस आधार पर इसका अध्ययन करते हुए उसके अगले चरण में हम देखेंगे कि किस प्रकार से यह संविधान की संरक्षक है उसका व्याख्याकार है। यही नहीं नहीं लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकारों को बहुत महत्व होता है। इस लिए उन अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी अर्थात् उसके प्रवर्तन में किसी प्रकार के अवरोध आने पर सर्वोच्च न्यायालय में जाया जा सकता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम-

1. लोकतंत्र में स्वतन्त्र न्यायलय के महत्व को जान सकेंगे |
2. सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों के बारे में जान सकेंगे |
3. सर्वोच्च न्यायलय को स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने में लिए क्या प्रावधान किये गए हैं, उसका अध्ययन कर सकेंगे |
4. न्यायिक पुनरावलोकन के अर्थ को जान सकेंगे |

12.3 न्यायपालिका

शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायापालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कानून के क्रियान्वयन और कानून की व्याख्या और उसकी वैधता, अवैधता की व्याख्या से संबंध रखती है। प्रस्तुत इकाई में हमें न्यायपालिका का अध्ययन करेंगे। लोकतंत्र में तो यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि एक तरफ तो यह व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करती है तो कार्यपालिका के कार्यों का भी संविधान के उपबंधों के अधीन परीक्षण कर उसकी वैधता और अवैधता का निर्णय करती है। साथ ही भारत में न्यायपालिका तो संविधान की रक्षण भी है। जहाँ अस्पष्टता की स्थिति हो, संविधान की मूलभावना के अनुरूप उसकी व्याख्या भी करती है। संविधान के द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों की रक्षा और व्याख्या के गुरुतर दायित्व का निर्वाह भी करती है।

भारत में अमेरिका के समान दोहरी न्यायिक व्यवस्था नहीं है वरन् यहाँ पर एकीकृत न्यायपालिका जो पिरामिडाकार में सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय तक आदि संगठित है।

12.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन

उच्चतम न्यायालय के गठन के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 224 में किया गया है। संविधान इस बात का प्रावधान करता है कि सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना गठन और उसकी शक्तियों से संबंधित विधान करने का अधिकार संसद को है।

मूल संविधान के द्वारा जो प्रावधान किया गया उसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश थे। परन्तु बाद के परिवर्तनों के द्वारा जिसमें अन्ततः 1986 में संविधान में संशोधन कर प्रावधान के अनुसार एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में यह संख्या 26 है।

तदर्थ न्यायाधीश:- अनुच्छेद 127 इस बात का उपबन्ध करता है कि यदि उच्चतम न्यायालय में, न्यायाधीशों की गणमूर्ति न हो तो, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से, मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से बैठकों में उपस्थित होने के लिए अनुरोध कर सकते हैं।

अनुच्छेद 128 इस बात का प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय में जज हो सकता है, उससे उच्चतम न्यायालय में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकते हैं।

12.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। इस हेतु राष्ट्रपति, अनुच्छेद 124 (2) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से परामर्श करेंगे। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की स्थिति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अनिवार्य रूप से परामर्श करेंगे।

न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु योग्यता:- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 (3) में इस प्रकार का प्रावधान किया गया है जो इस प्रकार है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- देश के किसी उच्चतम न्यायालय का न्यूनतम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो या
- 3- न्यूनतम 10 वर्ष किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा हो, या
- 4- राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवत्ता हो।

कार्यकाल:- इस संबंध में न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं किया गया है। इनका कार्यकाल 65 वर्ष की उम्र तक है। इसके पूर्व वह राष्ट्रपति को संबोधित हस्ताक्षर से त्याग-पत्र दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें 'सावित्र कदाचार' या असमर्थता के आधार पर संसद के विशेष बहुमत से पारित प्रस्ताव पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से भी पद से हटाया जा सकता है।

महाभियोग:- जैसा कि हम ऊपर यह देख चुके हैं कि अनुच्छेद 124 (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। संविधान के द्वारा प्राप्ति शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम 1968 अधिनियमित किया है। जिसमें न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया इस प्रकार है-

- 1- सर्वप्रथम इस हेतु राष्ट्रपति से इस हेतु समावेदन करना होगा। यदि प्रस्ताव को लोकसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति और यदि राज्यसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति होनी आवश्यक है।
- 2- यदि प्रस्ताव लोकसभा में हो तो लोकसभा में अध्यक्ष और यदि राज्यसभा में है तो सभापति आवश्यकतानुसार परामर्श किसी से ले सकता है। परन्तु वह प्रस्ताव का स्वीकार/अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा।
- 3- अध्यक्ष/सभापति यदि प्रस्ताव को ग्रहण कर लेते हैं तो एक समिति गठित की जायेगी जिसमें तीन सदस्य होंगे-
 - a. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या कोई अन्य एक न्यायाधीश
 - b. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों में से कोई एक
 - c. कोई पारंगत विधिवेत्ता
- 4- यदि यह तीन सदस्यीय समिति इस प्रस्ताव पर सहमत होती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या असमर्थता से ग्रस्त है तो, समिति प्रस्ताव और अपने प्रतिवेदन को उस सदन में रखती है, जहाँ प्रस्ताव लंबित है।
- 5- प्रस्ताव पर दोनों सदनों के अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के विशेष बहुमत से यदि पारित हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।
- 6- अन्ततः राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश जारी करता है।

12.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध

जैसा कि हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि संविधान के रक्षक उसके व्याख्याकार और नागरिकों के अधिकारों के रक्षक के रूप में न्यायापालिका को बहुमत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने की जिम्मेदारी संविधान के द्वारा प्रदान किया गया है। ऐसी स्थिति में इतने गुरुतर दायित्व के निर्वहन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि न्यायापालिका को उसके कार्यों में अन्य संस्थाओं (विधायिका, कार्यपालिका) के दखल से स्वतन्त्र रखा जाए। इस बात का ऐहसास भारतीय संविधान निर्माताओं को था इसलिए उन्होंने इस हेतु, प्रावधान किये हैं, जो इस प्रकार हैं-

- 1- संविधान के द्वारा न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के उपरान्त पद से हटाने की प्रक्रिया बहुत ही दुरूस्त है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।
- 2- उच्चतम और उच्च न्यायालय पर होने वाला व्यय भारत की संचित निधि पर पारित है, जिससे कोई दबाव वित्तीय कारकों के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है।
- 3- सेवाकाल में न्यायाधीशों के लिए कोई अलामकारी परिवर्तन (जैसे वेतन, भत्ते कम करना आदि) नहीं किया जा सकता। ऐसा के वित्तीय आपातकाल के दौरान किया जा सकता है तो उसके पहले और न ही बाद में।
- 4- किसी न्यायाधीश के द्वारा अपने कर्तव्यों के अनुपालन में किये गये आचरण में संसद/राज्यविधान मण्डल में चर्चा नहीं हो सकती।
- 5- उच्चतम और उच्च न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

12.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। किसी न्यायालय को अभिलेख न्यायालय कहने के मुख्यतः दो आधार होते हैं।

- 1- जब न्यायालय के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति हो।
- 2- इसके निर्णय साक्ष के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। जब से निर्णय साक्ष के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैं तो ये प्रश्नगत नहीं किये जा सकते, वरन ये तो निश्चयात्मक प्रकृति के होते हैं।

12.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार:

इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्न विषय आते हैं-

1. प्रारंभिक अधिकारिता
2. अपीलिय अधिकारिता
3. लेख क्षेत्राधिकार

4. परामर्श अधिकारिता

5. न्यायिक पुनरावलोकन

1- प्रारम्भिक अधिकारिता:- संविधान के अनुच्छेद 131 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को कुछ प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे विषयों पर सुनवाई का प्रारम्भिक अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। किसी अन्य न्यायालय को नहीं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रारम्भिक अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय को है-

(अ) संसदीय सरकार और एक राज्य या उससे अधिक राज्यों के अन्य उत्पन्न किसी विवाद के सन्दर्भ में,

(ब) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच उठने वाले विवाद,

(स) दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद जो कि उनके वैधानिक अधिकारों के प्रश्न से संबंधित हो।

2- अपीलीय क्षेत्राधिकार:- सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। जिसे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। निम्नलिखित मामले में सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकार है-

(अ) संवैधानिक मामले में- जब उच्च न्यायालय के किसी निर्णय में संविधान की व्याख्या से संबंधित को विषय हो तो, उसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ब) दीवानी मामले में- अनुच्छेद 133 इस बात का प्रावधान करता है कि निम्नलिखित स्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय में, दीवानी मामलों में अपील की जा सकती है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि-

I. मामले में विधि या लोकमहत्व का कोई सारभूत प्रश्न निहित हो,

II. मामलों का निर्णय उच्चतम न्यायालय के द्वारा किया जाना आवश्यक है।

(स) फौजदारी मामले में- अनुच्छेद 134 में उन दशाओं का उल्लेख है जब फौजदारी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

I. जब उच्च न्यायालय के द्वारा किसी दोषमुक्त व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिये जाने का निर्णय दिया गया हो।

II. जब अपने अधीनस्थ न्यायालय से कोई वाद अपने को हस्तान्तरित करवाकर, अभियुक्त को दोषी करार देते हुए मृत्युदण्ड का निर्णय दे।

III. ऐसा तब भी किया जा सकता है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विषय, उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक हो।

3. लेख क्षेत्राधिकार: संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक भी बनाया गया है। इसी क्रम में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के तहत मूल अधिकारों के

प्रवर्तन के लिए निम्नलिखित लेख जारी कर सकता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा। इसके सन्दर्भ में हम मौलिक अधिकार के अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं।

4. परामर्शी क्षेत्राधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह किसी विषय में विधि के सारवान प्रश्न शामिल होने की दशा में, आवश्यक समझने पर सर्वोच्च न्यायालय से राय मांग सकता है। जिस विषय की सुनवाई कर न्यायालय अपनी राय दे सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसी राय मांगने पर, न तो सर्वोच्च न्यायालय राय देने के लिए बाध्य है, और न ही, सर्वोच्च न्यायालय यदि राय दे तो राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य है।

5. न्यायिक पुनरावलोकन- न्यायपालिका लोकतंत्र में नागरिक स्वतन्त्रता और अधिकारों के रक्षक के रूप में अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक तभी निर्वह कर सकता है, जब उसे कुछ बुनियादी अधिकार हो, जिसमें न्यायिक पुनरावलोकन भी एक है। इसकी शुरुआत अमेरिका में हुई है।

न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

12.5 उच्च न्यायालय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 214 में इस बात का प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। परन्तु, यदि संसद आवश्यक समझे तो वह दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो से अधिक राज्यों और किसी संघशासित क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना की जा सकती है।

संगठन - अनुच्छेद 216 में यह प्रावधान है कि एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर (जो राष्ट्रपति आवश्यक समझे) उच्च न्यायालय का गठन होगा।

अर्हताएं (योग्यताएं)- इस संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 217 में किया गया है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो।
- 2- वह भारत में कम-से-कम 10 वर्ष कोई न्यायिक पद ग्रहण कर चुका हो या
- 3- उच्च न्यायालय का कम-से-कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

नियुक्ति-इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के अतिरिक्त, उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श करता है।

पदावधि-उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र तक अपना पद ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त वह राष्ट्रपति को समय से पूर्व त्यागपत्र दे सकता है।

तथा साबित कदाचार और असमर्थता के आधार पर जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। वैसे ही इन्हें भी हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण- अनुच्छेद 222 के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश से परामर्श पर किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर सकता है।

12.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय के निम्नलिखित क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं-

- 1- अपीलीय- अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलीय अधिकार है।
- 2- प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार- अनुच्छेद 226 के अनुसार राजस्व संग्रह और मूलअधिकारों के प्रवर्तन हेतु, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है।
- 3- अन्तरण के अधिकार- अनुच्छेद 228 में प्रावधान है कि यदि उच्च न्यायालय को प्रतीत हो कि उसके किसी अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले में संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न निहित है तो उस मामले को अपने पास मंगाकर उस पर दो निर्णय दे सकता है।
- 4- अधीक्षण का अधिकार- अनुच्छेद 227 के तहत, उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है।
- 5- अनुच्छेद 231 में यह प्रावधान किया गया है कि जहाँ पर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय है वहाँ उन क्षेत्रों तक अन्यथा जिस राज्य के लिए उच्च न्यायालय होगा, वहाँ तक उसकी अधिकारिता होगी।

अभ्यास प्रश्न

2. सबसे बड़ा उच्च न्यायालय कौन सा है?
3. सर्वोच्च न्यायालय का मुख्यालय कहाँ है?
4. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति कौन करता है?
5. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को किस आधार पर उनके पद से हटाया जा सकता है?

12.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के आधार पर हम पर हमें भारत में न्यायपालिका की संरचना का अध्ययन करने को मिला है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से भारत में एकीकृत न्यायपालिका है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है जो जहाँ एक तरफ संविधान की संरक्षक है तो दूसरी तरफ नागरिकों के मौलिक अधिकारों की भी संरक्षक है जहाँ पर संविधान के किसी भाग को स्पष्ट समझने में किसी प्रकार की समस्या होती है तो वहाँ भी सर्वोच्च

न्यायलय संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत के आधार पर व्याख्या करने का कार्य भी करती हैं। इसके साथ ही न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित कानूनों का और कार्यपालिका के कृत्यों का परीक्षण संविधान के उपबंधों के आधार पर करती हैं, यदि उन्हें संविधान के उपबंधों के विपरीत पाती हैं तो उन्हें, संविधान के उल्लंघन की मात्रा तक शून्य घोषित करती हैं। इस प्रकार से भारत में न्यायपालिका शासन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

12.7 शब्दावली

न्यायिक पुनरावलोकन - न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 21 ,2.इलाहाबाद , 3.नई दिल्ली , 4.राष्ट्रपति ,5.साबित कदाचार ,असमर्थता

12.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1.डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- 2.त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
- 3.भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली
- 4.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- 1.भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा
- 2.भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- 3.The Constitution of India – J.C. Jauhari-2004-Sterling Publishers Private Limited New Delhi

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1.सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये |
- 2.संविधान और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायलय के कार्यों पर एक निबंध लिखिए |

इकाई 13 : भारतीय राजनीति में न्यायालय की भूमिका, न्यायिक सक्रियता

इकाई की रूपरेखा

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका
- 13.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952
- 13.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय
- 13.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन
- 13.7 न्यायिक सक्रियता
- 13.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)
- 13.9 सारांश
- 13.10 शब्दावली
- 13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

आजादी के बाद से आज तक भारतीय राजनीति ने कई उतार-चढ़ाव देखे। आजादी के वक्त हमारी राजनीतिक स्थिति अत्यधिक दुर्बल थी। आज उसमें परिपक्वता आयी है। राजनीतिक समझ बढ़ी है। राजनीतिक सामाजिकरण का स्तर ऊपर उठा है। हमारे नीति नियंताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को उचित समझते हुए भारत में इस व्यवस्था को लागू किया। आज भारत का लोकतंत्र विश्व के सफलतम लोकतंत्रों में एक है। इसकी ये सफलता इसके चार स्तंभों पर टिकी है। ये चार स्तंभ कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायापालिका और समाज को सबसे अधिक जागृत व सचेत करने वाला मीडिया या पत्रकारिता है। आज लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोकतंत्र के चारों स्तंभों को बदलने के लिये मजबूर किया है। आज यदि भारतीय राजनीति का चेहरा बदला है तो न्याय की गति में भी परिवर्तन आया है। भारतीय राजनीति में जहाँ आम आदमी का हस्तक्षेप बढ़ा है वहीं दूसरी तरफ अपराध ने भी राजनीति में प्रवेश किया है। भारत में राजनीतिक अपराधीकरण को लेकर कई बार न्यायपालिका और विधायिका एक दूसरे के आमने सामने आते रहे हैं।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारत में वर्तमान राजनीति का जो स्वरूप है उसका अध्ययन करेंगे तथा उन बिन्दुओं तक पहुँचने का प्रयास करेंगे जहाँ पर राजनीति अपना स्वरूप खो कर न्याय की शरण में आ जाती है। इस अध्याय में हम देखेंगे कि वर्तमान समय में न्यायपालिका का स्वरूप किस स्तर तक बदल गया है। आज न्यायपालिका सिर्फ न्याय तक सीमित न रह कर लोक कल्याणकारी हो गयी है। इस अध्याय में हम उन मुकदमों का भी अध्ययन करेंगे जिन्होंने भारतीय राजनीति की गति बदल दी।

13.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका

हम जानते हैं कि भारत में संघीय राज व्यवस्था है। लेकिन अन्य संघ शासनों के विपरीत संघ और राज्य न्यायालयों की प्रथक व्यवस्था नहीं है। जैसा कि अमेरिकी शासन में हमें दिखता है। न्यायालयों की एक व्यवस्था संघ और राज्य दोनों में कानूनों को लागू करने का काम करती है। भारतीय न्यायापालिका के पास कार्यकारणी और विधायिका की शक्तियों के विस्तार और सीमाओं की संविधान के अधीन व्याख्या और परिभाषा करने की सर्वोच्च शक्ति है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के साथ उच्च न्यायालय में शीर्ष स्तर की नियुक्तियाँ कार्यपालक शाखा द्वारा की जाती हैं। न्यायपालिका के पास निर्णय की असीमित शक्तियाँ हैं। ये विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को संविधान के अनुसार असंगत मानते हुए अमान्य ठहरा सकती है। न्यायपालिका के पास शक्ति है कि वह राजनीतिक सत्ताधारी या लोक सेवा की किसी भी कार्यपालिका की गतिविधि को गैर कानूनी करार देकर उसे निष्प्रभावी कर सकती है। इस मामले में प्रत्येक नागरिक या गैर नागरिक को राजनीतिक शक्ति प्राप्त संगठनों सहित कार्यपालिका की गतिविधियों के खिलाफ शिकायतों का निवारण करने के लिये न्यायालय जाने या अपील करने का अधिकार है। सामाजिक न्याय और नागरिकों द्वारा राजनीतिक सत्ता के हस्तक्षेप के बिना मौलिक अधिकारों का प्रयोग सुनिश्चित करने के लिये कई सिविल और अन्य संस्थान या कानून संविधान के अधीन बनाये गये हैं। सभी नागरिकों को समान अधिकार मिलने तथा राजनीतिज्ञों या लोक सेवकों के भ्रष्ट आचरणों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने के लिये कई राष्ट्रीय आयोग (जैसे मानवाधिकार आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, महिला आयोग, इत्यादि) बनाये गये हैं। यहाँ ये बात समझने वाली है कि न्यायिक निर्णय की अवहेलना न तो कार्यपालिका कर सकती है और न ही संसद। ये केवल अपील कर सकते हैं या न्यायालय के निर्णय की समीक्षा का निवेदन कर सकते हैं। लेकिन अंततः उन्हें न्यायिक निर्देशों का पालन करना ही होता है। भारत की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक पर्यावरण दूषित हुआ है। जिसके चलते अक्सर देखा जा रहा है कि लोक सेवकों व लोक संस्थानों से जैसी उम्मीद आम आदमी करता है वो उससे भटक गये हैं। लोक सेवक निजी स्वार्थों की राजनीति करने में लिप्त हैं। आम आदमी के हितों से उनका सरोकार कम होता जा रहा है। ये भारत की राजनीति में आज के दौर का सबसे बड़ा परिवर्तन है। आज विधायिका और कार्यपालिका जनहितों से दूर होती जा रही है। ऐसी स्थिति में आम आदमी न्यायपालिका की शरण में जा रहा है। इसीलिये हम देख रहे हैं कि बिगट कई वर्षों से न्यायापालिका ने अपनी कार्य शैली बदली है। वो आज आम आदमी के हितों के लिये आगे आयी है। जनहित याचिकाएं की शुरूआत कर जस्टिस पी.एन.भगवती ने भारत में गरीब जनता को एक नयी उर्जा देने का काम किया है। लेकिन हमारी न्याय प्रणाली में अभी सुधार होना बहुत जरूरी है। आज हमारे न्यायालयों में इतने मामलों लम्बित हैं कि फैसला आते-आते उस फैसले का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। आज सभी न्यायालयविशेषकर सर्वोच्च न्यायालय लंबित मामलों के बोझ तले दबा हुआ है। जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायिक व्यवस्था की क्षमता गंभीर रूप से क्षीण हो गयी है। न्यायापालिका से ये अपेक्षा की जाती है कि वो कार्यकारणी और विधायिका से स्वतंत्र रह कर कार्य करे तथा राजनीतिक दबाव से प्रथक रहे। फिर भी न्यायिक व्यवस्था के काम करने के लिये बजट, वेतन के साथ कई आधारभूत सुविधाएं कार्यकारणी द्वारा अनुमोदित होती हैं। कार्यकारणी से अटूट संबंध होने पर भी भारत की न्यायपालिका निष्पक्षता के लिये प्रसिद्ध है।

न्याय व्यवस्था को प्रभावित करने वाली समस्याओं, विशेषकर न्याय में होने वाली देरी के सवाल की विधि आयोग, विशेषकमेटियों, मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलनों द्वारा समय-समय पर पड़ताल की गयी लेकिन कोई प्रभावकारी कार्यवाही आज तक नहीं हो पायी है। आज भारत की राजनीति नाजुक दौर से गुजर रही है। राजनीति में जातिवाद, क्षेत्रवाद, परिवारवाद के साथ-साथ अपराध, धनबल, बाहुबल का समावेश हो चुका है। चुनावों की

बारम्बरता में बढ़ोतरी और अस्थायी सरकारों के आने से कई अनैच्छिक परिणाम हुए हैं। कार्यकाल कम होने तथा राजनीति में सत्ता हथियाने और सत्ता सुख लूटने व अधिकतम लाभ कमाने के लोभ में सरकारें /जन प्रतिनिधि अपने काम के प्रति गैर जिम्मेदार हो गये हैं। भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों की नयी व्यवस्था का उदय हुआ है। छोटी-छोटी राजनीतिक पार्टियाँ व उनके नेताओं की शक्ति बढ़ी है। सरकारों की स्थिरता अनिश्चित है जिससे लोकतंत्र का मायना धुंधलाने लगा है। गठबंधन सरकार में सत्ता में बने रहने के लिये राजनीतिक भ्रष्टाचार ने वैधता हासिल कर ली है। नौकरशाही राजनीतिज्ञों का खिलौना मात्र बन कर रह गयी है। सरकार और मंत्रालयों के काम की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने की संसद की भूमिका समय के साथ गठबंधन सरकारों के चलते कम होती जा रही है। ये स्थिति भारतीय राजनीति के लिये संकट की स्थिति है। ऐसी स्थिति में न्यायालयों की जिम्मेदारियाँ बढ़ी है। न्यायालय और अधिक सक्रिय हुए। उनकी सक्रियता बढ़ी है।

13.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952

हमारी स्तंत्रता से लेकर आज तक हमारे देश में लोकतंत्र निःसन्देह मजबूत हुआ है। लेकिन राजनीतिक अपराधीकरण भी बढ़ा है। आम चुनाव साफ-सुथरे होने से वंचित हो गये हैं। 1952 में बना जन प्रतिनिधित्व अधिनियम लगभग-लगभग अर्थहीन हो गया है। जन प्रतिनिधि अधिनियम 1952 की धारा 8 के तहत किसी प्रत्याशी के चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित होने के लिये दो वर्ष से अधिक की सजा मिलना आवश्यक है। यदि विशेषकानून के तहत यदि अपराधी पर अपराध सिद्ध हो जाता है तो उसे सजा कितनी भी मिले वो चुनाव नहीं लड़ सकता है। गंभीर आरोप विचाराधीन होने के बावजूद किसी प्रत्याशी को अयोग्य होने से बचाने के लिये न्यायशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जब तक दोष सिद्ध नहीं हो सम्बंधित व्यक्ति को निर्देश माना जाता है। हालांकि इसका उद्देश्यकैद या जुर्माने की सजा रोकने से है।

प्रख्यात विधिवेत्ता के.के.वेणुगोपाल के अनुसार फौजदारी कानून के तहतकम से कम तीन चरण ऐसे होते हैं जिन पर अभियुक्त दोषमुक्त हो सकता है। यदि अभियुक्त पर दोषी होने का आरोप लगता है तो अभियुक्त को यह अवसर मिलता है कि वह सिद्ध करे कि प्रथम दृष्टिया उसके विरुद्ध मामला नहीं बनता तथा संबंधित अपराध में सम्मिलित होने का समुचित आधार नहीं है। धारा 482 के तहत वह आरोप रद्द करने की माँग कर सकता है। वेणु गोपाल के अनुसार अधिनियम की धारा 8 में संशोधन होना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया गया है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई न्यायालय धारा 8(1) में वर्णित किसी अपराध के लिये तय कर देती है या कोई ऐसे अपराध के लिये व्यक्ति आरोपित हो जाता है जिसकी सजा दो वर्ष से अधिक हो सकती है तो उसे चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित कर देना चाहिए। जन प्रतिनिधि अधिनियम की धारा 8 में ऐसा संशोधन नहीं होने के कारण उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2002 में ऐसोसिएशन आफ डेमोक्रेटिक रिफार्म से सम्बन्धित निर्णय सुनाकर यह प्रावधान किया गया था कि सभी प्रत्याशी अपने नामांकन पत्र भरने के साथ यह घोषणा करेंगे कि उनके विरुद्ध ऐसे अपराधों के आरोप न्यायालय में विचाराधीन नहीं हैं जिनमें दो वर्ष से ज्यादा की कैद हो।

सांसद और विधायक रहते हुए यदि किसी को सजा हो जाती है तो ऐसे मामलों में प्रतिनिधि अधिनियम का अलग मानदण्ड लागू होता है। ऐसे मामलों में भले ही धारा 8 में वर्णित किसी अपराध की सजा मिली हो या दो वर्ष से अधिक सजा हुई हो, इसके आधार पर उसे अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है। चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी के एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि प्रत्याशी का निर्णय के खिलाफ अपील दायर करना या पुनर्विचार याचिका दायर करना ही प्रयाप्त नहीं है बल्कि उसे अपीलीय अदालत में यह भी साबित करना होगा कि

सुनवायी अदालत द्वारा उसके विरुद्ध निकाले गये निष्कर्ष तर्क विरुद्ध थे। वर्तमान सांसद और विधायकों के मामले में धारा 89(4) के अनुसार अपील दायर करने मात्र से अयोग्यता पर स्थगन लागू हो जाता है।

13.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय

न्यायिक पुनर्विलोकन से ये अभिप्राय लगाया जा सकता कि इसके द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यों की वैधता की जाँच की जाती है। इसका अर्थ ये हुआ कि न्यायालय द्वारा कानूनी तथा प्रशासनिक नीतियों की संवैधानिकता की जाँच तथा ऐसे कानून व नीतियों को असंवैधानिक घोषित करना जो संविधान के किसी अनुच्छेद पर अतिक्रमण करती हैं। कारविन के शब्दों में “ न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अंतर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में प्राप्त हैंजिन्हें वे अवैध व व्यर्थ समझे।” सन 1803 में अंग्रेज न्यायाधीश मार्शल ने मार्बरी बनाम मेडीसन के मामले में **‘ज्यूडीशियल रिव्यू’** की व्याख्या करते हुए कहा था कि न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालयों द्वारा अपने समक्ष पेश विधायी कानूनों तथा कार्यपालिका अथवा प्रशासनिक कार्यों का वह निरीक्षण हैजिसके द्वारा वह निर्णय करता हैकि क्या यह एक लिखित संविधान द्वारा निषिद्ध किये गये हैं अथवा उन्होंने अपनी शक्तियों से बढ़ कर कार्य किया हैया नहीं ? सर्वोच्च न्यायालय के इसी अधिकार को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार कहा गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन का इतिहास लगभग 196 वर्ष पुराना है। इस सिद्धान्त का उद्भव संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली में सर्वप्रथम दिखलायी पड़ता है। लेकिन कालान्तर में भारत, जापान व अन्य देशोंमें भी इस व्यवस्था को देखा जा सकता है।

यहाँ ध्यान देने वाली बात ये हैकि भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धान्त का उल्लेख संविधान के उपबंधों में कहीं नहीं मिलता है। फिर भी न्यायिक निरीक्षण के सिद्धान्त के आधारभूत तत्वों की मौजूदा स्थिति के कारण इस सिद्धान्त का स्वतः विकास हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता हैकि न्यायिक निरीक्षण के लिये तीन अपरिहार्य शर्तें होती हैं। जिन्हें भारतीय संविधान पूरा करता है। ये शर्तें निम्न हैं-

क. लिखित व कठोर संविधान

ख. केन्द्र व राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन

ग. मौलिक अधिकारों की व्यवस्था

आईये अब भारतीय संविधान के उन प्रावधानों पर नजर डालते हैं जिसके आधार पर ये स्पष्ट होता हैकि भारतीय संविधान निर्माता सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन जैसी व्यवस्था सौंपना चाहते थे।

एक- अनुच्छेद 13 में यह प्रावधान किया गया कि यदि किसी कानून द्वारा राज्य मूल अधिकारों का उल्लंघन करता हैतो उस कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा अपने मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी नागरिक संवैधानिक उपचार प्राप्त करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिये कार्यपालिका और संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पुनर्विलोकन कर सकता है।

दो- संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता हैजिससे संघ अथवा राज्यों ने अपने क्षेत्राधिकार को

तोड़ा हो। संविधान के अनुच्छेद 254 में यह प्रावधान किया गया है कि समवर्ती सूची के विषय पर यदि किसी राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानून संघ सदन द्वारा निर्मित किसी कानून से संघर्ष में हैं तो राज्य का कानून अवैध माना जायेगा।

तीन- अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन का अधिकार एकमात्र केन्द्रीय संसद को ही प्रदान नहीं किया गया है अपितु उसमें राज्य विधान सभाओं की भी निश्चित भूमिका का उल्लेख है। यदि कोई संशोधन विधान प्रक्रिया के तहत नहीं होता तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

चार- अनुच्छेद 132 के अनुसार ऐसे मामलों में जहाँ संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित है, सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक मामलों में निर्णय देने का अंतिम अधिकार है। न्यायमूर्ति मुखर्जी के अनुसार- 'भारत में संसदीय संप्रभुता के बजाय संवैधानिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। इस दृष्टि से भारत का संविधान अंग्रेजी संविधान के बजाय अमेरिकी संविधान से मिलता है। शासन के सभी उपकरण संविधान के अधीन हैं और न्यायालय को उनके कार्यों की वैधता की जाँच करने का अधिकार प्राप्त है।' डी0डी0बसु के अनुसार- 'यह अधिकार सैद्धान्तिक दृष्टि से हमारे संविधान का आधारभूत सिद्धान्त है। ये सर्वोच्च न्यायालय में गोपालन प्रकरण में स्वीकृत किया गया है।'

13.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन

भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने पिछले कई वर्षों में कई अभियोगों के सिलसिले में कुछ ऐसे फैसले दिये हैं जिनमें न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। यथा-

(1) शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ, 1952, इस अभियोग में संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि यह संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है क्योंकि ऐसा करना अनुच्छेद 13(2) द्वारा वर्जित था। चुनौती देने वालों का यह भी कहना था कि अनुच्छेद 13 में दिये गये 'विधि' शब्द के अंतर्गत अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित संविधानिक संशोधन भी सम्मिलित है।

सर्वोच्च न्यायालय ने चुनौती देने वालों के तर्कों को स्वीकार नहीं किया उसने निर्णय दिया कि-

- संविधान संशोधन की शक्ति जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित हैं अनुच्छेद 368 में निहित हैं।
- अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त 'विधि' का तात्पर्य केवल सामान्य विधायी प्रक्रिया से पारित कानून से हैं कि संविधान संशोधन से जोकि विशेष प्रक्रिया द्वारा पारित किये जाते हैं।

(2) सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 1965- इस वाद में सत्रहवें संविधान संशोधन की वैधता को चुनौती दी गयी थी। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ में दिये निर्णय को दोहराते हुए कहा कि मूल अधिकारों में संशोधन अनुच्छेद 368 में सम्मिलित हैं।

(3) गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, 1967- हेनरी गोलकनाथ अपनी बहुत सी सम्पत्ति छोड़ कर मर गये। स्थानीय अतिरिक्त आयुक्त ने गोलक नाथ की 418 एकड़ जमीन सिक्कोरिटी आफ लैण्ड टेन्योर्स एक्ट के अन्तर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित की इसकी पुष्टि वित्त आयोग ने भी 1952 में कर दी। गोलकनाथ के पुत्र व पुत्री तथा पौत्रियों ने वित्त आयोग के निर्णय को संविधान के अनुच्छेद 19(1) एक्स तथा 14 के विरुद्ध होने के कारण चुनौती दी इसके साथ

1951,1955,1964,1955 व 1964 में पारित प्रथम, चतुर्थ एवं सत्रहवें संशोधन को भी चुनौती दी है। इस वाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दो बिन्दु विचारणीय थे।

क- क्या संसद संविधान के भाग-3(मौलिक अधिकारों) में संशोधन कर सकती है?

ख- क्या अनुच्छेद 368 संसद को इस प्रकार का संशोधन करने का अधिकार देता है?

इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने छः/ पाँच के बहुमत से अपना निर्णय देते हुए कहा-

- संसद नागरिकों के मूल अधिकारों में परिवर्तन का अधिकार नहीं रखती तथा वह भाग-3 में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो उनमें कमी करें या उन्हें समाप्त करें।

- सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय शंकरि बनाम भारत संघ तथा सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य में दिये गये निर्णय को बदल दिया। तथा निर्णय देते हुए कहा कि उसके पूर्ववर्ती निर्णय वाध्यकारी नहीं है।

- सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान संशोधन की प्रक्रिया बताता है।

- अनुच्छेद 368 द्वारा किया गया संशोधन अनुच्छेद 13(2) में वर्णित विधि की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

(4) केशवानंद भारती वाद- केरल में एडनर मठ के स्वामी केशवानंद भारती ने केरल भूमि सुधार संशोधन अधिनियम 1969 की वैधता को चुनौती दी तथा यह कहा कि इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 25, 14, 19(1) एवं 31 का उल्लंघन हुआ है। इस वाद में फिर वही प्रश्न उठाये गये-

1. क्या अनुच्छेद 368 द्वारा मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है?

2. संसद के संविधान संशोधन के सम्बन्ध में क्या अधिकार हैं?

ध्यान देने वाली महत्वपूर्ण बात ये है कि इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने गोलकनाथ वाद में दिये गये निर्णय को बदलते हुए 24वें, 25वें संविधानिक संशोधन की उपधारा 2(अ) और 2(ब) और उपधारा 3 के प्रथम भाग की पुष्टि की तथा महत्वपूर्ण निर्णय देते हुए कहा कि- अनुच्छेद 368 के अंतर्गत मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है। संसद को संविधान के किसी भी उपबंध जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित हैंको संशोधन तथा उसे निरस्त करने का भी अधिकार प्राप्त है। ये बात ध्यान देने की है कि संसद को संविधान संशोधन का अधिकार तो दिया गया लेकिन ये उपबंध लगा दिया कि वो संविधान के मूल भूत ढाँचों को बदल नहीं सकता।

(5) ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य, 1950 - मद्रास के ए.के.गोपालन को निवारक निरोध अधिनियम के तहत बंदी बनाया गया जिस पर उसने अपने बंदीकरण को न्यायालय में चुनौती दी। उसने अपने पक्ष में तर्क देते हुए कहा कि इस निरोध द्वारा अनुच्छेद 19 में प्रदत्त भारत में अबाध स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। ये दैहिक स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है। साथ ही अनुच्छेद 21 के दैहिक अधिकार का भी अतिक्रमण हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों आधारों को निरस्त करते हुए कहा कि- अनुच्छेद 21 तथा 19 स्वतंत्रता के दो विभिन्न प्रकार हैं। अनुच्छेद 21 में प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता का तथा अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

एक दूसरे से किसी भी तरह सम्बंधित नहीं हैं। अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता को चुनौती नहीं दी जा सकती है। वह अनुच्छेद 19(5) के अधीन निर्बन्धन लगाती है।

(6) मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ, 1980- मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त के सम्बंध में व्याख्या की और 4-1 के बहुमत से निर्णय में ये कहा कि मूल अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अनुच्छेद 31-ग अनुच्छेद 14 तथा 19 का उल्लंघन करता है। इसमें संशोधन किया जा सकता है।

13.7 न्यायिक सक्रियता

लोकतांत्रिक ढाँचे में कार्यपालिका व विधायिका ही नीतिगत निर्णय लेती हैं। जो नीतियाँ बनायी जाती हैं उनको लागू करने की जिम्मेदारी भी निभाती हैं। कार्यपालिका व विधायिका अपना काम सही तरीके से कर रहीं हैं या नहीं ये देखने का काम न्यायपालिका करती है। जब कोई संस्था अपना दायित्व ठीक-ठाक से नहीं निभाती तो न्यायपालिका सक्रिय हो जाती है। न्यायपालिका की इस सक्रियता को ही न्यायिक सक्रियता का नाम दिया गया है।

वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता नामक शब्द बहुत अधिक सुर्खियों में है। हालांकि न्यायिक सक्रियता शब्द की चर्चा संविधान में कहीं भी नहीं की गयी है। लेकिन भारत के पूर्व न्यायाधीश पी.एन. भगवती के विचारानुसार जिन व्यवस्थाओं में न्यायालय को पुनर्वालोकन का अधिकार है वही न्यायिक सक्रियता का रूप है। हाल ही के दिनों में न्यायालयों ने ऐसे फैसले दिये हैं जो भारत के विकास को गति प्रदान करेंगे। इस समय जब भारत में त्वरित विकास की आषा बलवती है, न्यायालयों के लंबित मामलों की संख्या चिंता का कारण बनी हुयी है। सुव्यवस्था के अभाव में किसी भी देश या समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। त्वरित न्याय मिलते रहने पर लोगों की कानून व व्यवस्थाओं के प्रति आस्था बनी रहती है। न्यायिक सक्रियता का समाज के सभी वर्गों ने स्वागत किया है। भारत में न्यायिक सक्रियता को बल देने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य जनहित याचिकाओं ने किया है। आम आदमी अपने अधिकारों के लिये सजग हुआ है। न्यायालयों की जटिल प्रक्रिया को न सझने के कारण न्याय की गुहार भी न कर पाने वाला आम नागरिक जनहित याचिकाओं के माध्यम से अपने न्याय को पाने में सफल हुआ है। इसे भारत में न्यायिक सक्रियता की सफलता ही कहा जा सकता है। न्यायालय का कार्य संवैधानिक पदावलियों की व्याख्या के साथ-साथ अब देश के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी बढ़ गया है। न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक पहलू को देखने से स्पष्ट होता है कि गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य 1967 में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल अधिकारों में संशोधन पर रोक लगाते हुए यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 में केवल संविधान में संशोधन की प्रक्रिया निहित है तथा संविधान के भाग-3 में संशोधन करने की शक्ति नहीं देता। सर्वोच्च न्यायालय ने इस वाद के निर्णय में पहली बार अपनी सक्रियता का परिचय दिया। बाद में संसद ने 24 वें संविधान संशोधन द्वारा गोलक नाथ में दिये गये मामले को अप्रभावी बना दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती 1974 के मामले में 24 वें संशोधन को यह देखते हुए विधि मान्य बताया कि संसद किसी भी संशोधन के तहत संविधान के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 42वें संविधान संशोधन द्वारा संसद ने न्यायालय के निर्णय को अप्रभावी बनाते हुए यह व्यवस्था की कि अनुच्छेद 368 के तहत किये गये संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। लेकिन न्यायालय ने मिर्नवा मिल 1980 के मामले में 42 वें संविधान संशोधन के अंतर्गत अनुच्छेद 368 में जोड़े गये खण्ड-4 व 5 को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि यह संविधान के मूलभूत ढाँचे को प्रभावित करते हैं। पीपुल्स यूनिन फार डेमोक्रेटिक राईट्स बनाम यूनिन ऑफ इण्डिया, 1980 के निर्णय में यह निर्धारित किया गया कि यह आवश्यक नहीं है कि न्याय पाने के लिये पीड़ित या शोषित व्यक्ति ही याचिका दायर

करें। पीड़ित व्यक्ति की ओर से किसी अन्य व्यक्ति या संस्था द्वारा भी याचिका दायर की जा सकती है। इसे ही जनहित याचिका का नाम दिया गया और यहीं से जनहित याचिका वाद की शरूआत होती है। जनहित याचिका न्यायालय की सक्रियता में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। जनहित याचिकाओं ने आम आदमी को सजग बनाया है। न्यायालयों में बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं दायर हुयी हैं।

13.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)

न्यायिक सक्रियता के पीछे महत्वपूर्ण हाथ लोकहित याचिका का है। सही मायने में यदि देखा जाये तो न्यायिक सक्रियता का प्रमुख आधार लोकहित/जनहित याचिका ही है। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 32 के अधीन यह वर्णित है कि संविधान से लाभ पाने का अधिकार उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हो। लोकहितवाद को परिभाषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा है कि-समाज के निर्धन व कमजोर वर्ग के लोगों के संवैधानिक और विधिक अधिकारों में इसका काफी महत्व है। लोकहितवाद में जनहितवाद विधि के शासन का एक आवश्यकतत्व है। जनहितवाद के महत्व को बताते हुए कहा गया कि कमजोर और गरीब व्यक्ति जो न्यायालय में जाने में असमर्थ हैं उसकी क्षती से सम्बंधित याचिका अनुच्छेद 32 के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती है। जनहितवाद के लिये कुछ आवश्यकतत्व मुख्य हैं-

1. पीड़ित पक्ष न्यायालय में जाने में असमर्थ है।
2. यह याचिका पत्र द्वारा न्यायालय को सम्बन्धित करके लिखी जा सकती है।
3. पत्र में शपथ पत्र या कोई फीस आवश्यक नहीं है।
4. याचिका किसी भी संस्था या व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती है।
5. याचिका को लोकहित से सम्बन्धित होना चाहिए।

आइये अब भारत में जनहित याचिका के इतिहास पर नजर डालते हैं। जनहित याचिका का प्रथम मुख्य मुकद्दमा 1979 में हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य (ए.आई.आर.1979 एस.सी. 1360) वाद में कारागार और विचाराधीन कैदियों की अमानवीय स्थिति के संबंध में था। यह एक अधिवक्ता द्वारा इण्डियन एक्सप्रेस अखबार में छपे एक खबर, जिसमें बिहार राज्य में बंद हजारों विचाराधीन कैदियों का हाल वर्णित था के आधार पर दायर किया गया था। मुकदमें के नतीजन 4000 से अधिक कैदियों को रिहा कर दिया गया। त्वरित न्याय को मौलिक अधिकार माना गया। जो कि उन कैदियों को नहीं दिया जा रहा था। इस सिद्धान्त को बाद के केसों में भी स्वीकार किया गया। एम.सी.मेहता और भारतीय संघ व अन्य (1989-2001) इस लम्बे चले वाद में आदेश दिया गया कि दिल्ली मास्टर प्लान के तहत और दिल्ली में प्रदूषण कम करने के लिये दिल्ली के रिहायशी इलाकों से करीब 10,000 औद्योगिक इकाईयों को दिल्ली से बाहर स्थानांतरित किया जाये। इस फैसले ने 1999 के अंत में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में औद्योगिक अषांति और सामाजिक अस्थिरता को जन्म दिया इसकी आलोचना भी हुयी। ये कहा गया कि न्यायालय द्वारा आम मजदूरों के हितों की अनदेखी पर्यावरण के लिये की जा रही है। इस जनहित याचिका ने 20 लाख के लगभग लोगों को प्रभावित किया था जो इन इकाईयों में सेवारत थे। एक और फैसले में अक्टूबर 2001 में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि सभी सार्वजनिक बसों को चरणवद्ध तरीके से सिर्फ सी.एन.जी.(कम्प्रेस्ड नैचुरल गैस) ईंधन से चलाया जाय। क्योंकि यह माना गया कि सीएनजी डीजल की अपेक्षा

कम प्रदूषण करती है। हांलाकि बाद में यह पाया गया कि बहुत कम गंधक वाला डीजल भी अच्छा व बेहतर विकल्प हो सकता है।

ऐसी याचिकाएं जिसमें न्यायालय ये मानता है कि इसमें जनहित का आधार नहीं है ऐसी याचिकाओं को न्यायालय खारिज भी कर सकता। उदाहरण के लिये- अन्नाद्रमुक के सांसद पी.जी. नारायणन द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में दायर जनहित याचिका जिसमें न्यायालय ने संघ सरकार को जनहित में सन टीवी प्राइवेट लिमिटेड के डायरेक्ट टू होम सेवा के आवेदन को अस्वीकृत करने का अनुरोध किया गया था। न्यायालय ने इस याचिका को स्वीकार नहीं किया। जनहितवाद का सिद्धान्त स्थापित होने के बाद से न्यायालयों में जनहित याचिका अधिक संख्या में आने लगी। न्यायालय में दाखिल की जाने वाली याचिकाओं में कुछ तो वास्तव में महत्वपूर्ण व घोशणीय होती हैं जबकि कुछ व्यर्थ याचिकाओं को निरस्त करने में भी न्यायालयों को सुनवाई करनी पड़ती है। जिससे न्यायालयों का समय खराब होता है। गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू करने को चुनौती देने वाली एक जनहित याचिका को निरस्त करते हुए 17 फरवरी, 1997 को उच्चतम न्यायालय की एक खण्डपीठ ने जनहितवाद के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो मुख्य हैं-

अ- प्रत्येक नागरिक को यह मूलाधिकार प्राप्त नहीं है कि वह न्यायालय में जनहित वार दाखिल करे।

ब- न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह प्रत्येक जनहित याचिका को स्वीकार ही करे। न्यायालय को जनहित याचिका तभी स्वीकार करनी चाहिए जब वह प्रतिनिधित्व प्रकृति की हो।

स- न्यायालय अपने समक्ष दाखिल की गयी जनहित याचिका को तभी स्वीकार करेगा, जब उसे विश्वास हो जाये कि याचिका के बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।

आज भारत में जनहित याचिकाओं के चलते अनावश्यक मुकदमों की भी बाढ़ आ गयी है। बेवजह अनेकों मुद्दों पर जनहित याचिका दायर की जा रही है। जिससे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जनहित याचिका की महत्ता कम हो सकती है। इसके लिये न्यायालयों द्वारा प्रयास किया जा रहा है।

13.9 सारांश

इस इकाई में हमने समझा कि न्यायपालिका किस तरह से दिन प्रतिदिन शक्तिशाली हुयी है। न्यायालयों ने अपनी कार्यक्षमता को बदला है। आज न्यायालय आम आदमी के पक्ष में खड़ा नजर आ रहा है। जब हमारे देश की व्यवस्था चलाने वाली संस्थाएं पथभ्रष्ट हो चुकी हैं तब न्यायालयों ने आगे आकर इन संस्थाओं के कामों को अपने अधीन लेते हुए दोनों संस्थाओं कार्यपालिका व व्यवस्थापिका को सचेत कर उन्हें राह दिखायी है। न्यायालयों ने महत्वपूर्ण फैसले लिये हैं जिससे समाज में चेतना का प्रचार-प्रसार व आम जनता का संविधान व न्याय के प्रति विश्वास बढ़ा है। हमने इस अध्याय में ये भी समझा कि न्यायालय कैसे सक्रिय हुए हैं। न्यायपालिका ने प्रगतिशील निर्णय देते हुए जेल प्रशासन गरीबों को कानूनी सहायता, कैदियों और विचारधीन कैदियों की रिहाई के मामले में अपनी चिंता व्यक्त करते हुए ऐसे महत्वपूर्ण फैसले दिये कि जो हमेशा के लिये नजीर बन गये। सामाजिक चेतना रखने वाले न्यायाधीशों ने जनहित याचिकाओं को महत्व देकर न्यायालय का क्षेत्राधिकार और उसकी शक्ति को दुनियाँ के सामने प्रस्तुत किया।

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. भारतीय शासन एवं राजनीति-पुखराज जैन एवं बी.एल. फाँड़िया

3. रजनी पामदत्त- आज का भारत
4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. .भारत का भविष्य-विमल जालान
2. .बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपालिका
3. .एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्यपालिका व व्यवस्थापिका से अधिक शक्तिशाली होकर उभरी हैंहमारी न्यायापालिका। इससे आप क्या समझते हैं ?
2. संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय कैसे कार्य करता है?
3. भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन के महत्व को समझाते हुए तीन महत्वपूर्णवादों का वर्णन कीजिए?
4. जनहित याचिका ही न्यायिक सक्रियता का मूल आधार है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करें?